शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

दिसम्बर : १९६४ ☆ वर्ष २० वाँ, मंगसर, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : ७

मुनिराज मिलें तो...!

एक बार (-वीर संवत् २४८४ मंगसिर कृष्णा ३ के दिन) चैतन्य के अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंद की अद्‌भुत बात निकलने पर स्वामीजी ने अत्यंत प्रमोद और भक्तिपूर्वक गद्‌गद् कंठ से कहा था कि—अहा! यदि कहीं भावलिंगी संत मुनि मिल जायें और चैतन्य के अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंद की ऐसी आध्यात्मिक बात सुनाते हों तो उनके चरणों में बैठकर... अरे! उनके पैरों के तलवे चाँटकर / बहुमान-सहित यह बात सुनें।

वार्षिक मूल्य तीन रुपया

[२३५]

एक अंक चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

भूल सुधार

(१) द्रव्यसंग्रह जो स्वाध्यायमंदिर सोनगढ़ द्वारा छपा है, उसमें पृष्ठ ६५, ला० २-३ में 'अस्तिपना नहीं है' उसके स्थान पर 'अस्तिपना है कायपना नहीं है' ऐसा समझें।

(२) द्रव्यसंग्रह, पृष्ठ १४१, ला० २२ पर 'पृथक् न मानकर' के स्थान पर 'पृथक् मानकर' ऐसा समझें।

—प्रकाशक

समयसार कलश टीका
तथा
प्रवचनसार १५ बाद

तैयार हो जावेंगे, बाईन्डिंग हो रही है।

—प्रकाशक

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

दिसम्बर : १९६४ ☆ वर्ष २० वाँ, मंगसर, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : ७

आत्मा कौन है और किसप्रकार प्राप्त हो ?

१— इस परिशिष्ठ में कथित सभी नय साधक जीव को एक समय में एक साथ लागू पड़ती है।

२— नियतनय और अनियतनय वह दोनों नय भी प्रत्येक साधक जीव को एक काल में एक साथ होती है।

३— कालनय-अकालनय, जिस जीव को जिस काल में मोक्ष हुआ है, उसी जीव को वही मोक्ष अन्य अपेक्षा से 'अकालनय' से हुआ है किंतु किसी जीव को काल से और किसी अन्य जीव को अकाल से मोक्ष होता है, ऐसा सिद्धांत नहीं है।

[श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्रवचनसार शास्त्र के परिशिष्ट में ४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन किया है, उसमें से पूज्य कानजी स्वामी के खास प्रवचनों का सार: —]

अनन्त नयात्मक श्रुतप्रमाण ज्ञान से प्रमेय होनेवाला आत्मा

आत्मा वास्तव में चैतन्यसामान्य द्वारा व्याप्त अनंत धर्मों का अधिष्ठाता (स्वामी) एक द्रव्य है; क्योंकि अनंत धर्मों में व्याप्त जो अनंत नय है, उनमें व्याप्त एक श्रुतज्ञान स्वरूप प्रमाण है, उस प्रमाणपूर्वक स्वानुभव द्वारा यह आत्मा प्रमेय होता है—ज्ञात होता है। उसीप्रकार अनंत नय एक

श्रुतज्ञान में समा जाते हैं। कोई कहे कि—'छद्मस्थ को अपने आत्मा की खबर नहीं पड़ती' तो यह बात मिथ्या है। श्रुतज्ञान द्वारा सारे स्वद्रव्य को ज्ञेय बनाकर अनंत धर्मात्मक और एक समय में परिपूर्ण ऐसा चैतन्यस्वरूप का निर्णय करके स्व-सन्मुख ढ़लने से श्रुतज्ञान द्वारा पूर्णरूप आत्मा स्वानुभव में आता है।

देखो भाई! अनंत धर्मोंवाला अपना आत्मा है, उसकी यह बात है। जिसप्रकार रुपयों का ढेर पड़ा हो, उसे गिनने की कैसी उमंग उठती है? तो यहाँ तेरे आत्मा में एक समय में अनंत धर्मों का ढेर पड़ा है, अंतर्मुख होकर उसका माप करने की तुझे उमंग उठती है? यदि उसका माप करना हो तो वह तेरे श्रुतज्ञान प्रमाण से ही होता है, किसी राग से या निमित्त से उसका माप नहीं होता, किंतु ज्ञान अंतरोन्मुख करे तो उस ज्ञान से ही आत्मा का माप होता है। इसके अतिरिक्त अपने आत्मा को स्वद्रव्यरूप से जानने के लिये किसी भी अन्य ज्ञान-पर का ज्ञान काम नहीं आता। प्रमेय भी स्वयं है, प्रमाण ज्ञान भी अपना ही है।

धर्म अनंत है किंतु वस्तु (प्रत्येक स्वद्रव्यरूप आत्मवस्तु) एक है। नय अनंत है किंतु उसे जाननेवाला प्रमाणज्ञान एक ही है। अनंत नय है, वे सब एक श्रुतज्ञान प्रमाण में समा जाते हैं, अनंत धर्म हैं, वे सब एक वस्तु में समा जाते हैं, वस्तु का एक भी धर्म पृथक् नहीं रह जाता। **प्रत्येक आत्मा में एक ही साथ अनंत धर्म हैं, किसी को किसी काल में अमुक धर्म सहित माना जाये, ऐसा नहीं है।** अनंत धर्म और अनंत नय हैं, ऐसा बतलाया अवश्य है, किंतु अनुभव में उन धर्मों अथवा नयों का भेद नहीं रहता, अभेद हो जाते हैं। एक अभेद श्रुतप्रमाण स्वानुभव से संपूर्ण वस्तु को जानता है।

अनंत धर्मवाला आत्मा है, वह प्रमेय है और अनंत नयोंवाला श्रुतज्ञान है, वह प्रमाण है, उसमें अब ४७ नयों द्वारा आत्मा के ४७ धर्मों का वर्णन करेंगे। **वस्तु में अनंत धर्म एक साथ ही हैं।** उन सबका वाणी द्वारा भिन्न-भिन्न वर्णन नहीं हो सकता। वाणी में तो अमुक ही आते हैं। यहाँ ४७ नयों से ४७ धर्मों का वर्णन किया है, किंतु उसमें दूसरे अनंत धर्म भी साथ आ ही जाते हैं। नय के समूह के द्वारा आत्मा कैसा ज्ञात होता है, उसका यह वर्णन है।

यहाँ एक-एक नय द्वारा क्रमशः एक-एक धर्म का वर्णन है किंतु उसमें पूरा प्रमाण और पूरा प्रमेय साथ ही आ जाता है। आत्मा के किसी भी धर्म को स्वीकार करनेवाले, आत्मद्रव्य के सन्मुख देखकर ही उस धर्म को स्वीकार करते हैं, न कि पर सन्मुख, क्योंकि आत्मा के अनंत धर्मों

में से कोई भी धर्म पर के आधार से नहीं है किन्तु अनंत धर्म के पिण्डरूप आत्मद्रव्य के आधार से ही प्रत्येक धर्म विद्यमान है। इसलिए संपूर्ण धर्मी आत्मद्रव्य दृष्टि में आये बिना उसके एक-एक धर्म की स्वीकृति यथार्थ नहीं होती। नय के द्वारा एक-एक धर्म को मुख्य करके देखनेवाला गौणरूप से अनंत धर्मवाली पूर्ण वस्तु को भी स्वीकार करता है, क्योंकि सब धर्म चैतन्यस्वरूप इस आत्मवस्तु का है। एक धर्म कहीं वस्तु से पृथक् होकर नय का विषय नहीं होता, इसलिये किसी भी नय से एक धर्म को मुख्य करके देखनेवाले की दृष्टि भी अकेले धर्म पर होती नहीं है। धर्म तो धर्मी ऐसी अखण्ड वस्तु के आधार से स्थित है; इसलिये उसी पर दृष्टि रखकर एक-एक धर्म का सच्चा ज्ञान होता है। समस्त नयों के वर्णन में यह बात मुख्यतया ध्यान में रखना चाहिए।

(२६) नियतिनय से आत्मा का वर्णन

अनंत धर्मवाला चैतन्यमूर्ति आत्मा प्रमाणज्ञान से ज्ञात होता है; उसका २५ नयों से अनेक प्रकार से वर्णन किया है। अब, नियति, स्वभाव, काल, पुरुषार्थ और देव—इन पाँच बोलों का वर्णन करते हैं; उनमें प्रथम नियतिनय से आत्मा कैसा है, वह कहते हैं।

आत्मद्रव्य नियतनय से नियतस्वभावरूप भासित होता है; जिसप्रकार उष्णता, वह अग्नि का नियत स्वभाव है; उसीप्रकार नियतिनय से आत्मा भी अपने नियतस्वभाववाला भासित होता है। आत्मा के त्रिकाल एकरूप स्वभाव को यहाँ नियतस्वभाव कहा है; उस स्वभाव को देखनेवाले नियतनय से जब देखो, तब आत्मा अपने चैतन्यस्वभावरूप से एकरूप भासित होता है। पर्याय में कभी तीव्रराग, कभी मंदराग और कभी रागरहितपना, और कभी राग बदलकर द्वेष, कभी मतिज्ञान और कभी केवलज्ञान, एक क्षण मनुष्य और दूसरे क्षण देव—इस तरह अनेक प्रकार होते हैं;—उनका वर्णन आगे आनेवाले बोल में आत्मा के अनियतस्वभावरूप से करेंगे। यहाँ आत्मा के नियत स्वभाव की बात है। जैसा शुद्ध चैतन्य ज्ञानानंदस्वभाव है, वैसे ही नियतस्वभावरूप से आत्मा सदैव प्रतिभासित होता है; पर्याय अल्प हो या अधिक हो, विकारी हो या निर्मल हो, परंतु नियतस्वभाव से तो आत्मा सदैव एकरूप है। **ऐसे नियतस्वभाव को जो देखता है, उसे अकेली पर्यायबुद्धि नहीं रहेगी किंतु द्रव्यस्वभाव का अवलंबन होगा। पर्यायबुद्धिवाला जीव आत्मा को एकरूप नियतस्वभाव से नहीं देख सकता और न उसके नियतनय होता है।**

यहाँ द्रव्य के त्रिकाली स्वभाव को ही नियत कहा है; जिसप्रकार उष्णता वह अग्नि का नियतस्वभाव है, अग्नि सदैव उष्ण ही होती है; ऐसा कभी नहीं हो सकता कि अग्नि उष्णतारहित

हो। उसीप्रकार चैतन्यपना आत्मा का नियत स्वभाव है; उस स्वभाव से जब देखो, तब आत्मा एकरूप चैतन्यस्वरूपमय ज्ञात होता है। यद्यपि पर्याय में भी नियतपना अर्थात् क्रमबद्धपना है; जिस समय जिस पर्याय का होना नियत है, वही होती है; उसके क्रम में परिवर्तन नहीं होता—ऐसा पर्याय का नियत स्वभाव है; परंतु इस समय यहाँ उसकी बात नहीं है; यहाँ तो निमित्त की अपेक्षारहित आत्मा का जो त्रिकाल एकरूप रहनेवाला स्वाभाविक धर्म है, उसका नाम नियतस्वभाव है और वह नियतनय का विषय है।

जिसप्रकार अग्नि का उष्णस्वभाव है, वह नियत ही है—निश्चित ही है; अग्नि सदैव उष्ण ही होती है। उसीप्रकार आत्मा का चैतन्यस्वभाव नियत-निश्चित-सदैव एकरूप है; नियतस्वभाव से आत्मा अनादि-अनंत एकरूप नियत परमपारिणामिकस्वभावरूप ही भासित होता है; बंध-मोक्ष के भेद भी उसमें दिखाई नहीं देते। **बंध और मोक्ष की पर्यायें नियत अर्थात् स्थायी एकरूप नहीं हैं परंतु अनियत हैं। उदय-उपशम-क्षयोपशम या क्षायिक—यह चारों भाव भी अनियत हैं; परमपारिणामिकस्वभाव ही नियत है। आत्मा का सहज निरपेक्ष शुद्ध स्वभाव ही नियत है। नियतनय आत्मा को सदैव ज्ञायकस्वभावरूप ही देखता है। आत्मा का ज्ञायकस्वभाव है, वह नियत-निश्चित हुआ अनादि-अनंत स्वभाव है; उसमें कभी परिवर्तन नहीं हो सकता। आत्मा के ऐसे स्वभाव को जाननेवाला जीव पर्याय के अनेक प्रकारों को भी जानता है, तथापि उसे पर्यायबुद्धि नहीं होती। आत्मा के नियत एकरूप ध्रुव स्वभाव को जानने से उसी का आश्रय होता है; इसके अतिरिक्त किसी निमित्त, विकल्प या पर्याय के आश्रय की मान्यता नहीं रहती।** इसप्रकार प्रत्येक नय से शुद्ध आत्मा की ही साधना होती है। जो जीव अंतरंग में शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा को नहीं देखता, उसके एक भी सच्चा नय नहीं होता।

जैसे कोई कहे कि—ऐसा नियम बनाओ जिसमें कभी परिवर्तन न हो। उसीप्रकार यह नियतनय आत्मा के स्वभाव का ऐसा नियम बाँधता है कि जो कभी पलट न सके। आत्मा का नियम क्या है ?—कि अपने शुद्ध ज्ञानानंदस्वभाव से त्रिकाल रहना ही उसका नियम है; अपने ज्ञानानंद स्वभाव को वह कभी नहीं छोड़ता। **जो आत्मस्वभाव के ऐसे नियम को जानता है, वह नियम से मुक्ति प्राप्त करता है।**

देखो, यह आत्मस्वभाव के गीत! संतों के अंतर अनुभव में से यह झंकार उठी है कि अरे जीव! तूने अपने नियत परमानन्दस्वभाव को कभी छोड़ा नहीं है; तेरा सहजज्ञान और आनंद

स्वभाव तुझमें नियत है; तू सदैव अनाकुल शांत रस का कुंड है; यदि अग्नि कभी अपनी उष्णता को छोड़ दे तो भगवान आत्मा अपने पवित्र चैतन्यस्वभाव को छोड़े! परंतु ऐसा कभी नहीं होता। केवलज्ञान और परम आनंद प्रगट होने के सामर्थ्य से सदैव परिपूर्ण ऐसा तेरा नियत स्वभाव है; उस स्वभाव के अवलंबन से ही धर्म प्रगट होता है; इसके अतिरिक्त कहीं बाह्य से धर्म नहीं आता। एक बार अंतर में अपने ऐसे नियत स्वभाव को देख!

नियतनय से देखने पर पवित्रता का पिण्ड आत्मा स्वयं चैतन्यस्वभाव से नियत ज्ञात होता है—ऐसा उसका धर्म है। यह धर्म आत्मा को सदैव अपने परम शुद्ध अमृतरस में डुबा रखता है; अपने शांत उपशमरस में स्थिर-नियत रखता है। नरक में या स्वर्ग में; अज्ञानदशा के समय या साधकदशा के समय, निगोद में था तब या सिद्धदशा में होगा तब—कभी भी वह अपने स्वभाव को बदलकर अन्यरूप नहीं हो जाता—ऐसा आत्मा का नियतस्वभाव है। जो ऐसे नियतस्वभाव को जाने, उसके पर्याय में भी ऐसा ही नियत होता है कि अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करे।

एक ओर देखने से अनुकूलता में राग और फिर वह बदलकर प्रतिकूलता में द्वेष—इसप्रकार आत्मा अनियतस्वभाव से लक्ष में आता है; और दूसरी ओर से देखने पर तीन लोक की चाहे जैसी प्रतिकूलता आ पड़े, तथापि आत्मा कभी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता—ऐसा उसका नियत स्वभाव है।—इसप्रकार दोनों स्वभावों से जो आत्मा को जानता है, उसे ध्रुव एकरूप स्वभाव की महिमा आकर उसमें अंतरोन्मुखता हुए बिना नहीं रहेगी।

जिसप्रकार अग्नि में उष्णता न हो, ऐसा कभी नहीं हो सकता; **उसीप्रकार आत्मा का ज्ञानानंदस्वभाव अनादि अनंत एकरूप है, उसका नाम नियतस्वभाव है।** अग्नि का स्वभाव ऐसा नियत है कि उसमें उष्णता होती है; उसीप्रकार आत्मा में ऐसा नियत धर्म है कि अपने शुद्ध चैतन्यस्वभाव से वह कभी पृथक् नहीं होता। आत्मा का त्रिकाली स्वभाव अनंत सहजानंद की मूर्ति है; उस स्वभाव को देखनेवाले ज्ञानी जीव ऐसा नहीं मानते कि किन्हीं अनुकूल निमित्तों से मेरा स्वभाव नवीन उत्पन्न होता है अथवा प्रतिकूल निमित्तों से मेरा स्वभाव नष्ट हो जाता है। इसलिये उन ज्ञानियों को चाहे जैसे अनुकूल-प्रतिकूल प्रसंगों में भी अनंतानुबंधी राग-द्वेष होते ही नहीं। वे जानते हैं कि **हमारा आत्मा त्रिकाल चैतन्य ज्ञायकरूप से नियत है; हमें अपने ज्ञायकस्वभाव से छुड़ाने की किन्हीं संयोगों की तो शक्ति नहीं है,** और पर्याय के क्षणिक विकार में भी ऐसी शक्ति नहीं है कि हमें अपने स्वभाव से पृथक् कर दे। जिसप्रकार लोग नियम लेते हैं कि हम अमुक वस्तु नहीं खाएँगे;

उसीप्रकार आत्मा के नियतस्वभाव का ऐसा नियम है कि तीन काल में कभी भी अपने चैतन्य-स्वभाव को छोड़कर विभावरूप नहीं होना। **जो घड़ी-घड़ी में बदले, उसे नियम नहीं कहा जाता।**

देखो, यह काहे की बात चल रही है ? यह भगवान आत्मा के गीत गाए जा रहे हैं; आत्मा में जो धर्म हैं, उनकी यह महिमा गायी जा रही है। अज्ञानी को अनादि काल से अपने स्वभाव की महिमा नहीं रुचती और वह पर की महिमा करता है। जहाँ उच्च प्रकार के हीरे-जवाहिरात या आभूषणों की महिमा सुनता है, वहाँ उनकी महिमा आ जाती है; परंतु आत्मा स्वयं तीन लोक का प्रकाशक चैतन्य हीरा है, उसके स्वभाव की महिमा गायी जा रही है, उसे सुनने में अज्ञानी को रुचि या उत्साह नहीं आता। यहाँ तो जिसे आत्मा का स्वभाव समझने की जिज्ञासा जागृत हुई है, उसे आचार्यदेव समझाते हैं। आत्मा का शुद्धस्वभाव त्रिकाल नियमित है; उसी के आधार से पर्याय में शुद्धता प्रगट होती है; इसके अतिरिक्त कहीं बाह्य में से, विकार में से या क्षणिक पर्याय में से शुद्ध पर्याय नहीं आती। भगवान आत्मा ने अपनी पवित्रता के पिण्ड को कभी छोड़ा नहीं है। पर्याय में जो शुद्धता प्रगट होती है, वह तो पहले नहीं थी और नवीन प्रगट हुई, इसलिये वह अनियत है; और शुद्ध स्वभाव ध्रुवरूप से सदैव ऐसे का ऐसा ही है; इसलिये वह नियत है। पर्याय जिस समय जो होना हो, वही होती है;—इसप्रकार से पर्याय का जो नियत है, उसकी इस नियतनय में बात नहीं है परंतु यहाँ तो द्रव्य के नियतस्वभाव की बात है; क्योंकि नियत के समक्ष फिर अनियतस्वभाव का भी कथन करेंगे; उसमें पर्याय की बात लेंगे। पर्यायों के नियतपने की (क्रमबद्धपर्याय की) जो बात है, उसमें इस नियत और अनियत ऐसे दो प्रकार नहीं हैं; उसमें तो नियत का एक ही प्रकार है कि समस्त पर्यायें नियत ही हैं—कोई भी पर्याय अनियत-अनिश्चित नहीं है परंतु इससमय तो आत्म वस्तु में नियतस्वभाव और अनियतस्वभाव—ऐसे दोनों धर्म उतारना है; इसलिये यहाँ नियत अर्थात् द्रव्य का एकरूप स्वभाव; पर्याय का क्रम नियत है परंतु पर्यायस्वभाव त्रिकाल एकसमान रहनेवाला नहीं है, इसलिये उसे यहाँ अनियत स्वभाव कहा है। जब पर्याय का नियतपना (-क्रमबद्धपना) कहना हो, उस समय तो विकार भी नियत कहा जाता है; ज्ञान नियत है, ज्ञेय नियत हैं, विकार नियत है, संयोग और निमित्त भी नियत हैं, जो हों वही होते हैं, अन्य नहीं होते; जिस समय जो होना है, वह सब नियत ही है। ऐसे नियत के निर्णय में भी ज्ञानस्वभाव की ही दृष्टि हो जाती है, और वस्तु का नियत-अनियत स्वभाव कहा, उसके निर्णय में भी ध्रुवस्वभाव की दृष्टि हो जाती है। द्रव्य के नियत स्वभाव को जानने पर राग को अनियत धर्मरूप से जानता है, इसलिये उस राग में स्वभावबुद्धि नहीं

होती; इसप्रकार आत्मा के नियत स्वभाव को जानने पर राग से भेदज्ञान हो जाता है।

राग होता है, वह आत्मा का अनियतस्वभाव है—ऐसा जाने, अथवा राग को उससमय की पर्याय के नियतरूप से जाने, तो भी उन दोनों में, 'आत्मा का नियतस्वभाव उस राग से भिन्न है' ऐसा भेदज्ञान होकर स्वभावदृष्टि होती है।

जो जीव त्रिकाली द्रव्य के नियतस्वभाव को जाने, वही जीव त्रिकाल पर्यायों के नियतपने को यथार्थ जानता है, और क्षणिक भावों के अनियतपने को भी वही जानता है। पर्याय में राग हुआ, वह आत्मा का अपना अनियत धर्म है, इसलिये कर्म के उदय के कारण राग हुआ, यह बात नहीं रहती। आत्मा का स्थायी स्वभाव, वह नियत है और क्षणिक भाव, वह अनियत है। पूर्व अनादिकाल में आत्मा नरक-निगोद आदि चाहे जिस पर्याय में रहा, तथापि आत्मा के नियतधर्म को उसने अपने शुद्धस्वभाव से एकरूप बना रखा है; जहाँ-जहाँ परिभ्रमण किया, वहाँ सर्वत्र अपने शुद्ध चैतन्यस्वभाव को अपने साथ रखकर भटका है। यदि ऐसे अंतरस्वभाव का ज्ञान करे तो वर्तमान में अपूर्व धर्म होता है।

नियतनय का विषय त्रिकाल एकरूप रहनेवाला द्रव्य है और अनियतनय का विषय पर्याय है। **'अनियत' का अर्थ अक्रमबद्ध-अनिश्चित अथवा उल्टी-सीधी पर्याय—ऐसा नहीं समझना; परंतु पर्याय, वह आत्मा का त्रिकाल एकरूप रहनेवाला स्वभाव नहीं है किंतु वह पलट जाता है, उस अपेक्षा से उसे अनियत धर्म समझना।** पर्याय तो त्रिकाल के प्रत्येक समय की जैसी है, वैसी नियत है; उसमें कुछ उल्टा-सीधा नहीं हो सकता। बस! तू अपने ज्ञान की प्रतीति करके उसका ज्ञाता रह जा। शरीरादि मेरे हैं—यह बात भूल जा, और राग को बदलूँ—यह बात भी भूल जा; शरीरादि और रागादि—सबको जाननेवाला तेरा ज्ञानस्वभाव है, उसे सँभाल; वह तेरा नियतस्वभाव है। अपने नियतस्वभाव को तूने कभी छोड़ा नहीं है।

आत्मा त्रिकाल ज्ञानस्वभाव है—इसप्रकार द्रव्य के नियतस्वभाव का निर्णय करे तो वह स्वभावदृष्टि से रागादि का ज्ञाता हो गया।

द्रव्य के नियतस्वभाव को जानने पर, राग को पर्याय के नियतरूप से जाने तो उसमें भी राग का ज्ञाता हो गया।

राग आत्मा का अनियत स्वभाव है अर्थात् वह आत्मा का त्रिकाल स्थायी स्वभाव नहीं है—ऐसा जाने तो उसमें भी राग और स्वभाव का भेदज्ञान होकर राग का ज्ञाता रह गया।

—इसप्रकार चाहे जिस रीति से समझे परंतु उसमें ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता करना ही आता है और वही धर्म है।

'नियतवाद' का बहाना लेकर अज्ञानी लोग अनेक प्रकार की अंधा-धुंधी चलाते हैं। सर्वज्ञदेव ने जैसा देखा है, उसीप्रकार नियम से होता है—इसप्रकार सर्वज्ञ की श्रद्धापूर्वक के सम्यक् नियतवाद को भी अज्ञानी गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं; परंतु उसमें ज्ञानस्वभाव के निर्णय का महान पुरुषार्थ आता है, उसकी उन्हें खबर नहीं है। तथा दूसरे स्वच्छन्दी जीव, सर्वज्ञ के निर्णय के पुरुषार्थ को स्वीकार किये बिना अकेला नियत का नाम लेकर पुरुषार्थ को उड़ाते हैं, उन्हें भी नियतस्वभाव की खबर नहीं है।

गोम्मटसार में नियतवादी को गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा है। वह जीव तो ज्ञानस्वभाव की प्रतीति का सम्यक् पुरुषार्थ नहीं करता, सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं करता; परंतु रागादि करने योग्य मानता है, राग की रुचि होने से विकार का और पर का स्वामी होकर कहता है कि 'जो नियत होगा, वह होगा' परंतु 'जो नियत होगा, वह होगा'—ऐसा जाना किसने, उसका निर्णय कहाँ किया?—अपने ज्ञान में। तो तुझे अपने ज्ञान की प्रतीति है? ज्ञान की बढ़ाई और महिमा को जानकर, उसके सन्मुख होकर, ज्ञेयों के नियत को जो जानता है, वह तो मोक्षमार्गी साधक हो गया है, उसकी गोम्मटसार में बात नहीं है, परंतु जो मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानस्वभाव के सन्मुख हुए बिना और सर्वज्ञ की श्रद्धा किये बिना मात्र परसन्मुख देखकर नियत मानता है, वह मिथ्या नियतवादी है और उसी को गोम्मटसार में गृहीतमिथ्यादृष्टि कहा है।

सर्वज्ञस्वभाव की श्रद्धापूर्वक अपने ज्ञानस्वभाव के सन्मुख होकर ऐसा निर्णय किया कि अहो! सब नियत है; जिससमय जैसा होना है, वैसा ही क्रमबद्ध होता है; मैं तो स्व-पर प्रकाशी ज्ञाता हूँ। ऐसा निर्णय, वह सम्यग्दृष्टि का सम्यक् नियतवाद है। इस नियत में द्रव्य-पर्याय सबका समावेश हो जाता है; अज्ञानी का नियतवाद ऐसा नहीं होता। जिसने अपने ज्ञानस्वभाव के सन्मुख होकर उसकी रुचि का सम्यक्-पुरुषार्थ प्रगट किया और शुभ-अशुभभावों की रुचि छोड़ दी है, उसी ने वास्तव में सम्यक् नियतवाद को माना है; उसमें चैतन्य का पुरुषार्थ है, मोक्ष का मार्ग है। उसका वर्णन स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की ३२१-३२२ वीं गाथा में है; सम्यग्दृष्टि जीव वस्तु के यथार्थ स्वरूप का कैसा चिंतवन करना है, वह उसमें बतलाया है।

यहाँ प्रवचनसार में जो **नियतधर्म कहा है, वह तीसरी बात है। यहाँ तो आत्मा का जो**

त्रिकाल एकरूप शुद्ध निरपेक्ष चैतन्यस्वभाव है, उसका नाम नियत धर्म है। स्वभाववान कभी अपने मूलस्वभाव को नहीं छोड़ता—ऐसा उसका नियतधर्म है। यह नियतधर्म तो ज्ञानी-अज्ञानी सभी जीवों में है; परंतु ज्ञानी ही उसे नियतनय द्वारा जानते हैं। नियतधर्म सभी आत्माओं में हैं, परंतु नियतनय सभी आत्माओं के नहीं होता; जो ज्ञानी आत्मा के नियतस्वभाव को जाने, उसी के नियतनय होता है।

इसप्रकार नियतनय के तीन प्रकार हुए:—

(१) गोम्मटसार में कहा हुआ ज्ञान की प्रतीतिरहित गृहीतमिथ्यादृष्टि का नियतवाद।

(२) स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा हुआ ज्ञानी का नियतवाद; उसमें सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानस्वभाव की भावनापूर्वक सर्वज्ञदेव के देखे हुए वस्तुस्वरूप का चिंतन करता हुआ, जैसा होता है वैसा पर्याय के नियत को जानता है; उसमें विषमभाव नहीं होने देता। इसलिये यह ज्ञानी का नियतवाद तो वीतरागता और सर्वज्ञता का कारण है।

(३) इस प्रवचनसार में कहा हुआ नियतस्वभाव; नियतनय से सभी जीव त्रिकाल एकरूप ज्ञानस्वभाव से नियत हैं।

उपरोक्त तीन प्रकारों में से गोम्मटसार में जिस नियतवाद को गृहीतमिथ्यात्व में गिना है, वह अज्ञानी का है; उसे सर्वज्ञ की श्रद्धा नहीं है। **स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में वर्णित नियतवाद तो सर्वज्ञ की श्रद्धासहित और ज्ञाता-दृष्टास्वभाव की सन्मुखता के पुरुषार्थसहित ज्ञानी का सम्यक् नियतवाद है।** और प्रवचनसार में जिस नियतवाद की बात है, वह समस्त जीवों का त्रिकाल एकरूप शुद्ध चिदानंदस्वभाव है, उसकी बात है। आत्मा अपने असली चैतन्यस्वभाव को कभी नहीं छोड़ता, ऐसा उसका नियतस्वभाव है। जो जीव ऐसे नियतस्वभाव को जाने, उसे विकार पर बुद्धि नहीं रहती; क्योंकि विकार आत्मा का त्रिकाल स्वभाव नहीं है; इसलिये इस नियत में उसका स्वीकार नहीं है। इस तीसरे बोल की अपेक्षा से तो विकार आत्मा का 'अनियतभाव' है, और दूसरे बोल की अपेक्षा से तो विकार भाव भी 'नियत' है, क्योंकि उससमय उसी पर्याय का क्रम नियत है।

विकार होता है, वह आत्मा का त्रिकाली स्वभाव नहीं है, इसलिये अनियतरूप से उसका वर्णन करेंगे; परंतु उस अनियत का अर्थ ऐसा नहीं है कि उस समय की उस पर्याय के क्रम में भंग पड़ा! आत्मा की पर्याय में कभी विकार होता है और कभी नहीं होता; और न वह सदैव एक-सा रहता है—इसलिये उसे अनियत कहा है; परंतु उत्पाद-व्ययरूप पर्यायें, पर्याय के क्रम की अपेक्षा

से तो वह भी नियत ही है। वस्तुस्वभाव त्रिकाल व्यवस्थित परिणमित हो रहा है; उसकी तीनों काल की पर्यायों में इतनी नियमितता है कि उसके क्रम का भंग करने में अनंत तीर्थंकर भी समर्थ नहीं हैं। **पर्यायों के ऐसे व्यवस्थितपने का निर्णय करनेवाला जीव स्वयं त्रिकाली द्रव्य के सन्मुख देखकर वह निर्णय करता है; इसलिये वह स्वयं स्वभावोन्मुख और मोक्षपथ में बैठा हुआ साधक हो गया है। क्रमरूप पर्यायें एकसाथ नहीं होती; इसलिये उस क्रम की प्रतीति करनेवाले की दृष्टि क्रमरूप द्रव्यस्वभाव पर होती है, और उसी में मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ आ जाता है।**

धर्मी जीव नियतनय से ऐसा जानता है कि मैंने अपने स्वभाव को सदैव ऐसे का ऐसा नियत बना रखा है; मेरे स्वभाव में कुछ भी न्यूनाधिकता नहीं; विकार के समय मेरे स्वभाव में से कुछ कम नहीं हो जाता और न केवलज्ञान होने से कुछ बढ़ जाता है; पर्याय में विकार हो या निर्विकारीपना हो, परंतु अपने नियत स्वभाव से तो सदैव एकरूप हूँ। **इसप्रकार प्रत्येक साधक जीव में द्रव्य की अपेक्षा से आत्मा का नियत धर्म है परंतु उसी के साथ पर्याय अपेक्षा से अनियत धर्म भी विद्यमान है** उसे भी धर्मी जानता है; उसका वर्णन अगले बोल में करेंगे।

❀ ❀ ❀

अग्नि कभी ठंडी हो और कभी गर्म हो—ऐसे दो प्रकार उसमें नहीं हैं; अग्नि गर्म ही होती है—ऐसा एक नियत प्रकार है। उसीप्रकार नियतनय से आत्मा में भी ऐसा नियत स्वभाव है कि वह सदैव एकरूप शुद्ध चैतन्यस्वरूप ही रहता है। जिसप्रकार अग्नि कभी अपनी उष्णता से पृथक् नहीं होती, ऐसा उसके स्वभाव का नियम है; उसीप्रकार आत्मा के स्वभाव का ऐसा नियम है कि वह अपने शुद्ध चैतन्यत्व से कभी पृथक् नहीं होता।

यहाँ त्रिकाली शुद्ध स्वभाव के नियम को नियत कहा है। गोम्मटसार का नियतवादी तो ज्ञान स्वभाव की प्रतीति के पुरुषार्थ से रहित है। इसलिये वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है। और स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ज्ञानस्वभाव की प्रतीति के पुरुषार्थसहित सम्यग्दृष्टि के सम्यक् नियतवाद का वर्णन है। जिस पदार्थ की जिस समय, जिसप्रकार जिस अवस्था का होना सर्वज्ञदेव के ज्ञान में प्रतिभासित हुआ है, उस पदार्थ की उस समय उसीप्रकार वैसी ही अवस्था नियम से होती है; कोई इन्द्र-नरेन्द्र या जिनेन्द्र भी उसमें फेरफार नहीं कर सकते—ऐसा वस्तुस्वरूप समझनेवाले सम्यग्दृष्टि को साथ में ऐसी भी प्रतीति है कि मैं ज्ञाता हूँ। इसलिए पर से उदासीन होकर वह उसका ज्ञाता रहा, और अपनी पर्याय का आधार द्रव्य है, उस द्रव्य की ओर उन्मुख हुआ; द्रव्यदृष्टि के बल से उसे क्रमशः पर्याय की शुद्धता होने लगती है।—ऐसा यह सम्यक्नियतवाद है।

देखो, गोम्मटसार में नियतवादी को गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा, और यहाँ सम्यग्दृष्टि के नियतवाद को यथार्थ कहा। कहाँ कौन-सी अपेक्षा है, वह गुरुगम से समझना चाहिये।

ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे तहां समजवुं तेह,
त्यां त्यां ते ते आचरे आत्मार्थी जन एह।

कुछ लोग तो 'नियत'—ऐसा शब्द सुनकर ही भड़क उठते हैं; परंतु भाई! तू जरा समझ तो कि ज्ञानी क्या कहते हैं? 'क्रमबद्ध जैसा होना नियत है, वैसा ही होता है'—ऐसा जानने का बीड़ा किसने उठाया? जिस ज्ञान ने वह बीड़ा उठाया है, वह अपने ज्ञानसामर्थ्य की प्रतीति के बिना वह बीड़ा नहीं उठा सकता; क्रमबद्ध जैसा होना नियत है, वैसा ही होता है—ऐसा बीड़ा उठानेवाले ज्ञान में ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता का पुरुषार्थ—इत्यादि सभी समवाय आ जाते हैं।

(१) यहाँ कहा हुआ नियत धर्म सभी जीवों में है।

(२) द्वादशानुप्रेक्षा में कथित सम्यक् नियतवाद सम्यग्दृष्टि के ही होता है।

(३) गोम्मटसार में कथित मिथ्या नियतवाद गृहीत मिथ्यादृष्टि के ही होता है।

—इसलिये नियत का जहाँ जो प्रकार हो, वह समझना चाहिए; मात्र 'नियत' शब्द सुनकर भड़कना नहीं चाहिये।

'नियत स्वभाव' भी आत्मा का एक धर्म है; और उस धर्म से आत्मा को जानने पर उसके दूसरे अनंत धर्मों की स्वीकृति भी साथ ही आ जाती है। **आत्मा में अनंत धर्म एकसाथ ही हैं; उनमें से एक धर्म की यथार्थ प्रतीति करने से दूसरे समस्त धर्मों की प्रतीति भी साथ ही आ जाती है** और प्रमाणज्ञान होकर अनन्त धर्मों के पिण्डरूप शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा का अनुभव होता है।

पाँच समवाय कारणों में जो भवितव्य अथवा नियति आता है, वह सम्यक् नियतवाद है; उसके साथ दूसरे चारों समवाय आ जाते हैं। न होनेवाला हो जाये—ऐसा कभी होता ही नहीं; जो होता है, वह सब नियत ही है। परंतु उस नियत के निर्णय में ज्ञातास्वभाव का 'पुरुषार्थ' है, उस समय जो निर्मल स्वपर्याय प्रगट हुई, वही उस समय का 'काल' है; स्वभाव में जो पर्याय थी, वही प्रगट हुई है, इसलिये उसमें 'स्वभाव' भी आ गया; और जितने अंश में निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उतने अंश में कर्म का अभाव है—वह 'निमित्त' है—**इसप्रकार एक समय में पाँचों बोल एकसाथ आ जाते हैं। उनमें नियत-अनियतरूप अनेकांत उतारना हो तो जो भवितव्य है, वह 'नियत' और नियत के अतिरिक्त अन्य चार बोल हैं, वह 'अनियत'**—इसप्रकार नियत-अनियतरूप अनेकांत, वह भगवान

का मार्ग है। परंतु उसमें 'अनियत' शब्द का अर्थ 'आगे-पीछे या अनिश्चित'—ऐसा नहीं समझना चाहिये; किंतु आत्मा के नियत धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का नाम 'अनियत' समझना।

सम्यक् नियत में तो विकारी-अविकारी और जड़ की समस्त पर्यायें आती हैं; क्योंकि समस्त पर्यायों का क्रम नियत ही है; और यहाँ कहे हुए नियतस्वभाव में तो अकेला ध्रुवस्वभाव ही आता है; उसमें पर्याय नहीं आती।

पर्याय के नियत का निर्णय भी द्रव्य के निर्णय बिना नहीं किया जा सकता, क्योंकि पर्यायें द्रव्य में से ही आती हैं। **निश्चित पर्याय का निर्णय करने में द्रव्यसन्मुखता का अपूर्व पुरुषार्थ है; वह निर्णय करनेवाले को पर्यायबुद्धि नहीं रहती। वर्तमान पर्याय की बुद्धि अंतर्मुख होकर द्रव्य में प्रविष्ट हो जाये, तभी सम्यक् नियत का निर्णय होता है। पर्याय में समय-समय का विकार है, वह मेरे त्रिकाली स्वभाव में नहीं है—इसप्रकार दोनों धर्मों से आत्मा को जाने तो अवस्था विकार की ओर से विमुख होकर चैतन्यस्वभाव की ओर उन्मुख हो जाती है और सम्यग्ज्ञान होता है।**

द्रव्य का त्रिकाल नियत स्वभाव है, उसकी दृष्टि करे, या पर्याय के नियत और पुरुषार्थ आदि पाँचों समवाय एकसाथ हैं उन्हें समझे, तो मिथ्याबुद्धि दूर होकर स्वभावोन्मुखता हो जाती है। जिसने नियति का यथार्थ निर्णय किया, उसके आत्मा के ज्ञानस्वभाव का, केवली भगवान का और पुरुषार्थ का विश्वास भी साथ ही है। नियति का निर्णय कहो, स्वभाव का निर्णय कहो, केवलज्ञान का निर्णय कहो, पाँच समवाय का निर्णय कहो, सम्यक् पुरुषार्थ कहो—वह सब एकसाथ ही है।

नियत के साथवाले दूसरे पुरुषार्थ आदि चार बोल हैं, उन्हें नियत में नहीं लेते; इसलिये उन्हें अनियत कहा जाता है। इसप्रकार नियत और अनियत—ऐसा वस्तुस्वभाव है। अथवा दूसरे प्रकार से—द्रव्य का एकरूप स्वभाव, वह नियत धर्म है और पर्याय में विविधता होती है, वह अनियतधर्म है;—इसप्रकार नियत और अनियत दोनों धर्म एकसाथ विद्यमान हैं। उनमें नियतिनय से आत्मा के द्रव्यस्वभाव का वर्णन किया; अब अनियतनय से पर्याय की बात करेंगे।

—यहाँ २६वें नियतिनय से आत्मा का वर्णन पूरा हुआ।

[२७] अनियतिनय आत्मा का वर्णन

नियतिनय से आत्मा के एकरूप द्रव्यस्वभाव का वर्णन किया; अब अनियतिनय से पर्याय की बात करते हैं। आत्मद्रव्य अनियतिनय से अनियतस्वभावरूप भासित होता है; जिसप्रकार पानी

में उष्णता नियमित नहीं है परंतु अग्नि के निमित्त पाकर कभी-कभी उसमें उष्णता आ जाती है, उसीप्रकार अनियतिनय से आत्मा रागादि अनियतिस्वभावरूप ज्ञाता होता है।

पानी का स्थायी स्वभाव ठंडा है, वह नियत है और उष्णता उसके ठंडे स्वभाव से विपरीत दशा है; वह उष्णता पानी में नित्यस्थायी रहनेवाली नहीं है, इसलिये अनियत है; उसीप्रकार आत्मा की अवस्था में रागादि विकारी भाव होते हैं, वे स्थायी रहनेवाले नहीं हैं परंतु क्षणिक हैं, इसलिये वह अनियत है। ऐसा अनियतपना भी आत्मा का एक धर्म है। परंतु 'होना नहीं था और हो गया'—ऐसा यहाँ अनियत का अर्थ नहीं है। रागादि को अनियत कहा, इसलिये कहीं पर्याय का क्रम टूट जाता है, ऐसा नहीं है; जो रागादि हुए, वे कहीं पर्याय का क्रम टूटकर नहीं हुए हैं। पर्याय के क्रम की अपेक्षा से रागादि भी नियत क्रम में ही हैं; परंतु रागादि अशुद्धभाव हैं, **वह आत्मा का स्थायी स्वभाव नहीं है, इसलिये उसे अनियतस्वभाव कहा है।** अनियतनय से देखें तो उसमें भी क्रमबद्धपर्याय का फेरफार होना नहीं आता; पर्याय का क्रम तो नियत ही है।

गोम्मटसार में एकांत नियतवादी को मिथ्यादृष्टि कहा है, वह तो अलग बात है और यहाँ अलग बात है। गोम्मटसार में जिस नियतवादी को मिथ्यादृष्टि कहा है, वह तो नियत के नाम से मात्र स्वच्छंद का सेवन करता है; परंतु नियत के साथ अपना ध्रुव ज्ञातास्वभाव है, उसे वह जानता नहीं है, स्वसन्मुख होने के पुरुषार्थ को और सर्वज्ञ को मानता नहीं है, परसन्मुख ही रुचि रखता है, किंतु अनंतस्वसामर्थ्यमय ज्ञानस्वभाव की रुचि नहीं करता; स्वभाव की सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान के पुरुषार्थ को वह स्वीकार नहीं करता, अपनी निर्मल पर्यायरूप स्वकाल को वह जानता नहीं है और निमित्त कर्मों का अभाव हुआ है, उसे भी वह नहीं समझता।—इसप्रकार किसी प्रकार के मेल बिना मात्र नियत की बातें करके स्वच्छंदी होता है; **नियत के साथ पुरुषार्थ आदि समवायों को वह मानता नहीं है और श्रद्धा-ज्ञान का सम्यक् पुरुषार्थ प्रगट नहीं करता, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है।** परंतु सम्यग्दृष्टि तो नियत के निर्णय के साथ-साथ सर्वज्ञ का भी निर्णय करता है, और 'मैं ज्ञातास्वभाव हूँ'—ऐसा भी स्वसन्मुख होकर प्रतीति करता है। इसलिये नियत के निर्णय में उसे सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान का पुरुषार्थ भी साथ ही है; उससमय निर्मल पर्यायरूप स्वकाल है तथा निमित्त में मिथ्यात्वादि कर्म का अभाव है; इसप्रकार सम्यग्दृष्टि को एकसाथ पाँच समवाय आदि कारण आ जाते हैं। नियत के निर्णय के संबंध में मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि का यह महान अंतर है, वह अज्ञानी नहीं समझ सकते, इसलिये भ्रम से दोनों में समानता लगती है, परंतु वास्तव में तो उन दोनों में आकाश-पाताल जितना अंतर है।

'ज्ञायक हूँ'—इसप्रकार अपने ज्ञानस्वभाव की जिसे प्रतीति नहीं है और जो पर में फेरफार करने के मिथ्याभिमान का सेवन कर रहा है, वे यह नियतवस्तुस्वभाव की यह बात सुनते ही भड़क उठते हैं कि 'अरे! क्या सब नियत है!! हमारे पुरुषार्थ से कुछ फेरफार नहीं हो सकता?' यानी उसे ज्ञाता नहीं रहना है किंतु फेरफार करना है;—यह बुद्धि ही मिथ्यात्व है। अज्ञानी मानता है कि वस्तु की पर्याय नियत नहीं है, अर्थात् निश्चित नहीं है; उसमें हम अपनी इच्छानुसार परिवर्तन कर सकते हैं;—यह उसकी मान्यता मिथ्या है; क्योंकि वस्तु की पर्यायों में ऐसा अनियतपना नहीं है कि वे आगे-पीछे हो जायें! यहाँ तो आत्मा के अनियत धर्म का वर्णन करते हैं, उसमें तो अलग बात है; कहीं उसमें पर्याय के क्रम में परिवर्तन करने की बात नहीं है।

अज्ञानी मानता है कि इस अनियतनय में तो हमारी मान्यतानुसार वस्तु की क्रमबद्धपर्याय में फेरफार होना आयेगा!—परंतु ऐसा नहीं है; किसी पर्याय का क्रम तो फिरता ही नहीं है—इस नियम को अबाधित रखकर ही सब बात है। द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से देखने पर आत्मा शुद्धरूप दिखाई देता है और पर्यायदृष्टि से देखने पर अशुद्ध दिखाई देता है, वह अशुद्धता आत्मा का अनियतस्वभाव है; क्षणिक अशुद्धता को भी आत्मा स्वयं अपनी पर्याय में धारण कर रखता है।

आत्मा के अनियत धर्म को कौन मान सकता है?

आत्मा एकांत शुद्ध है, उसकी पर्याय में भी विभाव नहीं है—ऐसा जो माने, उसने आत्मा के अनियत धर्म को नहीं जाना है;

अथवा आत्मा की पर्याय में जो विकार है, वह पर के कारण होता है—ऐसा माने तो वह भी आत्मा के अनियत धर्म को नहीं जानता;

और पर्याय में जो क्षणिक विकार है, उसी को यदि आत्मा का स्थायी स्वभाव मान ले तो उसने भी आत्मा के अनियत धर्म को नहीं जाना है;

पर्याय में जो विकार है; रागादि की उत्पत्ति होती है, वह उसके अपने कारण से है; परंतु वह आत्मा का त्रिकाल रहनेवाला स्वभाव नहीं है, परंतु क्षणिक अशुद्धभाव—ऐसा जो जाने, उसी ने आत्मा के अनियत धर्म को यथार्थ से माना कहा जाता है।

सर्व जीव कर्म के वश हैं—ऐसा अज्ञानी मानता है, इसलिये कर्म ही जीव को विकार करता है, ऐसा वह मानता है, परंतु आत्मा के अनियत धर्म को वह नहीं जानता है। रागादि विकार होता है, वह कहीं जड़कर्म का धर्म नहीं है, परंतु वे रागादि आत्मा की ही अवस्था में होते हैं, इसलिये

आत्मा का ही अनियत धर्म है। तत्त्वार्थसूत्र में भी औदयिकभाव को भी आत्मा का स्वतत्त्व कहा है। रागादि भाव आत्मा का अनियतधर्म है, वह कहीं कर्म के वश नहीं है; आत्मा का वह धर्म कहीं जड़कर्म के कारण नहीं है।

'आत्मा की पर्याय में विकार नहीं होना था, किंतु बहुत से कर्मों का एकसाथ उदय आया, इसलिये विकार हुआ'—ऐसा अनियतपना नहीं है; परंतु आत्मा के स्वभाव का जो एकरूप नियम है, वैसा पर्याय में नहीं है; इसलिये पर्याय के विकार को अनियत कहा है। चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा त्रिकाल है, उसकी अवस्था में विकार और संसार है, वह अनियतस्वभाव से है; एक समय पर्यंत का अनिश्चित है, इसलिये वह आत्मा में सदैव नहीं रहेगा, और शुद्धस्वभाव तो सदैव ज्यों का त्यों रहनेवाला है; उस स्वभाव की महिमा करके उसके सन्मुख रहने से पर्याय में अनियत ऐसा संसार दूर हो जायेगा। इसलिये हे जीव! **मैं ज्ञायक आनंदकंदस्वभाव से नियत हूँ और अवस्था का विकार, वह अनियत है—ऐसी प्रतीति करके स्वभावोन्मुख हो! विकार आत्मा में स्थायी रहनेवाला भाव नहीं है, इसलिये पर्याय में भले ही चाहे जितना विकार हो, उससे तू अकुलाना मत, परंतु उस विकार की तुच्छता जान, और नित्यस्थायी शुद्ध नियतस्वभाव की महिमा लाकर उसके सन्मुख दृष्टि करके उसमें स्थिर हो!—ऐसा करने से, जैसा नित्य-स्थायी शुद्धस्वभाव है, वैसी शुद्धता पर्याय में प्रगट हो जायेगी और विकार नष्ट हो जायेगा। आत्मा के शुद्धस्वभाव के आश्रय से अनियत जो विकार है, वह दूर हो जाने योग्य है, परंतु पर्याय के क्षणिक विकार से कहीं आत्मा के नियतस्वभाव का नाश नहीं हो जाता। रागादि विकार तो क्षणिक अनियत नाशवंत हैं, वे शरणभूत नहीं हो सकते, और द्रव्य का नियतस्वभाव तो सदा शुद्ध है; उसकी शरण में जाने से जीव को शांति और कल्याण होता है। इसप्रकार नियतस्वभाव और अनियतस्वभाव—इन दोनों से आत्मा को जानकर उसके ध्रुव स्वभाव का आश्रय करना, वह प्रयोजन है।**

भाई! तेरा द्रव्यस्वभाव शुद्धचैतन्यमय है, वह नियत है और पर्याय में विकारी संसारभाव है, वह अनियत है, इसलिये वह दूर हो जायेगा। नियत शुद्धस्वभाव की दृष्टि करने से अनियत विकारी भाव दूर हो जायेगा। शुभाशुभ विकार तेरा क्षणिक पर्याय-धर्म है, तो भी वह अनियत है, इसलिये वह पानी की उष्णता की भाँति दूर हो जाता है। अग्नि की उष्णता, वह उसका नियतस्वभाव है; इसलिये वह दूर नहीं होता, परंतु पानी की उष्णता अनियत है, इसलिये वह दूर हो जाती है। उसीप्रकार आत्मा का शुद्धचैतन्यमय द्रव्यस्वभाव तो नियत है, उसका कभी नाश नहीं होता और पर्यायस्वभाव अनियतस्वभावरूप है, इसलिये वह दूर हो जाता है। इसलिये पर्याय में एकसमय का

विकार देखकर आकुलित मत हो, क्योंकि सारा द्रव्य विकाररूप नहीं हो गया है; द्रव्य तो नित्य शुद्धस्वभावरूप है ही, उसकी दृष्टि करने से विकार दूर हो जायेगा और शुद्धता प्रगट हो जायेगी। पर्याय का स्वभाव अनियत है, ऐसा जानकर उसका आश्रय छोड़ और द्रव्य का स्वभाव नियत है—ऐसा जानकर उसका आश्रय कर। अहो! मैं सदैव एकरूप परमपारिणामिकभाव से नियत हूँ—ऐसा जानकर स्वाश्रय करने से सम्यग्दर्शनादि अपूर्वभाव प्रगट हो जाता है।

आत्मा सदैव चैतन्य प्रभुता से परिपूर्ण है—ऐसा नियतनय देखता है, और पर्याय में पामरता है, उसे अनियतनय देखता है। यह दोनों धर्म आत्मा में एकसाथ हैं। आत्मा के ऐसे दोनों धर्मों को जो जानता है, उसका बल पूर्ण स्वभाव की प्रभुता की ओर ढले बिना नहीं रहता, इसलिये द्रव्य की प्रभुता के बल से पर्याय की पामरता का नाश हुए बिना नहीं रहता।

द्रव्यस्वभाव में विकार नहीं है और पर्याय में विकार हुआ, तो वह कहाँ से आया?—क्या कर्म के कारण आया? नहीं; विकार भी आत्मा का ही अनियत धर्म है; आत्मा की पर्याय में उसप्रकार की योग्यता है। अग्नि (अग्नि तो निमित्तमात्र है; उपचार कारण है।) के संयोग के समय पानी गर्म हुआ, वह अग्नि के कारण नहीं हुआ है परंतु पानी की पर्याय में उसप्रकार की योग्यता है; वह उष्णता पानी का अनियतधर्म है; उसीप्रकार आत्मा में जो रागादि पर्याय होती है, वह उसका अनियतधर्म है। यदि उस एकधर्म को भी निकाल दें या पर के कारण मानें तो सारी आत्मवस्तु ही सिद्ध नहीं होती अर्थात् सम्यग्ज्ञान नहीं होता। जिसप्रकार सौ वर्ष की उम्र का कोई व्यक्ति हो; उसके सौ वर्ष में से बीच का एक समय भी निकाल दिया जाये तो उस व्यक्ति की सौ वर्ष की अखंडता नहीं रहती, परंतु उसके दो टुकड़े हो जाते हैं। उसीप्रकार आत्मा अनंत धर्मों का अखंड पिण्ड है; उसमें से उसके एक भी अंश को निकाल दें तो अखंड वस्तु सिद्ध नहीं होती।

यहाँ नय से जिन-जिन धर्मों का वर्णन किया है, वे धर्म आत्मा के हैं। इसलिये नयज्ञान स्व की ओर देखता है। पर की ओर देखने से आत्मा के धर्मों का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, परंतु आत्मा की ओर उन्मुख होने से ही उसके धर्मों का यथार्थ ज्ञान होता है।

केवली भगवान को तेरहवें गुणस्थान में योग का कंपन है, वह उनका अनियतधर्म है; अघातिकर्म के कारण वह कंपन नहीं है। योग का कंपन भी आत्मा का अपना औदयिकभाव है; वह भी स्वतत्त्व का पर्याय धर्म है। द्रव्य और पर्याय दोनों मिलकर प्रमाण हैं, पर्याय का धर्म भी आत्मा का अपना धर्म है; पर्याय का धर्म कहीं पर के आधार पर अवलंबित नहीं है। पर्याय में जो

विकार हुआ, उस पर्यायरूप से कौन भासित होता है?—अनियतनय से आत्मद्रव्य स्वयं ही विकाररूप भासित होता है; कहीं परद्रव्य विकाररूप भासित नहीं होता।

वस्तु के अनंतधर्मों को सर्वज्ञदेव प्रत्यक्ष जानते हैं; और साधक सम्यग्ज्ञानी उन्हें प्रतीति में लेते हैं। यह धर्म पूर्णरूप अपनी आत्मा की प्रतीति कराते हैं; धर्मी आत्मा की प्रतीति के बिना धर्म की प्रतीति नहीं होती। यह तो वीतरागता के मंत्र हैं।

प्रमाणज्ञान कराने के लिये द्रव्य और पर्याय दोनों की बात साथ ही साथ ली है। नियतनय, द्रव्य अपेक्षा से आत्मा के नियतस्वभाव को देखता है और उसीसमय पर्याय की अपेक्षा से आत्मा में अनियतस्वभाव भी है; उसे देखनेवाला अनियतनय है। आत्मा की पर्याय में भूल और विकार सर्वथा हैं ही नहीं—ऐसा नहीं है; भूल और विकार भी आत्मा का अपना अनियतस्वभाव है, और आत्मा का स्थायी स्वभाव भूलरहित चैतन्यस्वरूपी है। वस्तु में जैसा हो, वैसा ही यदि न जाने तो ज्ञान की महिमा क्या? और उसकी प्रमाणता क्या? आत्मा के विकाररहित त्रिकालीस्वभाव को ज्ञान जानता है। यदि स्वभाव और विकार—दोनों को न जाने तो विकार में से एकाग्रता दूर कर स्वभाव में एकाग्र होना नहीं रहता, और सम्यग्ज्ञान भी नहीं होता। इसलिये किसी प्रकार का धर्म नहीं होता।

द्रव्यरूप से तो आत्मा सदैव एकरूप नियतस्वभाव से है, और उसकी पर्याय में हीनाधिकता के अनेक प्रकार होते हैं। इसलिये अनियतपना भी है। पर्याय में अनेक प्रकार और विकार हैं, उन्हें यदि न जाने तो ज्ञान सम्यक् नहीं होता। जिसप्रकार अग्नि में उष्णता तो नियत है, और पानी में उष्णता अनियत है, इसलिये कभी होती है और कभी नहीं भी होती। पानी का स्थायी स्वभाव नित्य ठण्डा होने पर भी उसकी वर्तमान पर्याय में जो उष्णता, वह उसका अपना अनियतस्वभाव है; उष्णतारूप होने की उसकी अपनी क्षणिक योग्यता है; यदि उस अनियत उष्णस्वभाव को न जाने और पानी को एकांत ठण्डा मानकर पीने लग जाये तो क्या होगा?—मुँह जल जायेगा। उसीप्रकार चैतन्यभगवान आत्मा उपशमरस का समुद्र नियतस्वभाव से सदा शुद्ध एकरूप होने पर भी उसकी व्यक्त पर्याय में जो रागादि हैं, वह भी उसका एकसमय का अनियतस्वभाव है। अपनी पर्याय में वे रागादि हैं—ऐसा यदि न जाने और आत्मा को सर्वथा शुद्ध माने तो उसे शुद्धता का अनुभव तो नहीं होगा परंतु मात्र रागादि की आकुलता का ही अनुभव होगा। आत्मा की पर्याय में जो क्षणिक विकार होता है, वह उसका अनियतस्वभाव है और वह 'अनियतनय' का विषय है, वह आत्मा का स्थायी

स्वभाव नहीं है। परंतु यदि वह विकार एक समयपर्यंत भी पर्याय में न होता हो तो उसे दूर करके स्वभाव में एकाग्र होने का प्रयत्न करना नहीं रहता; अर्थात् मोक्षमार्ग ही नहीं रहता। इसलिये द्रव्य और पर्याय—दोनों का यथार्थ ज्ञान हो, तभी मोक्षमार्ग की साधना हो सकती है।

वस्तु में नियत और अनियत दोनों धर्म हैं। वस्तु का जो सदैव एकरूप रहनेवाला स्वभाव है, वह नियत है, और जो क्षणिक स्वभाव है, वह अनियत है। परंतु क्रमबद्धपर्याय में जो पर्याय होना हो, उसके बदले उल्टी-सीधी होकर अनियत हो जाये—ऐसा यहाँ अनियत का अर्थ नहीं है। जिसप्रकार द्रव्य नियत हैं, उनके जड़-चेतनादि गुण नियत हैं, उसीप्रकार उनकी समय-समय की पर्यायें भी नियत हैं। पर्यायों का क्रम कहीं अनियत नहीं है; जिससमय जो पर्याय होना नियत है, उससमय वही पर्याय नियम से होगी। सर्वज्ञ उसे निश्चितरूप से जानते हैं। सर्वज्ञ का ज्ञान अन्यथा नहीं होता और वस्तु की पर्यायों का क्रम भी नहीं टूटता। अहो! इस निर्णय में स्वतन्त्र वस्तु स्वभाव का निर्णय आ जाता है, और पुरुषार्थ की उन्मुखता पर की ओर से हटकर अपने ज्ञायकस्वभाव की ओर हो जाती है। यह अंतर्दृष्टि की बात है। अनेक लोग अपनी कल्पितदृष्टि के अनुसार शास्त्र पढ़ जाते हैं, परंतु पात्रता और गुरुगम के अभाव से अंतर्दृष्टि का यह रहस्य नहीं समझ सकते। कोई तो ऐसा कहते हैं कि—'द्रव्यों की संख्या नियत है, उनके चेतन-अचेतन गुण नियत हैं तथा प्रतिक्षण उनका किसी न किसी प्रकार का परिणमन होगा, वह भी नियत है; परंतु अमुक समय में अमुक ही परिणमन होगा—यह बात नियत नहीं है; जैसे संयोग आयेंगे, वैसी अवस्था होगी।' देखो, ऐसा कहनेवाले को स्वतन्त्र वस्तुस्वरूप की कोई खबर नहीं है और सर्वज्ञ की भी श्रद्धा नहीं है। यह बात पहले कई बार विस्तारपूर्वक कही जा चुकी है। 'द्रव्य की शक्ति तो नियत है, परंतु परिणमन किस समय कैसा होगा, यह अनियत है;—इसप्रकार नियत-अनियतपना वह जैनदर्शन का अनेकांतवाद है।'—ऐसा अज्ञानी लोग मानते हैं; परंतु वह बात मिथ्या है; जैनदर्शन के अनेकांतवाद का ऐसा स्वरूप नहीं है। नियत और अनियत का अर्थ तो जैसा कहा है, वैसा ही है। **द्रव्यस्वभाव से आत्मा नियत शुद्ध एकरूप होने पर भी उसकी पर्याय में जो विकार होता है, वह उसका अनियतस्वभाव है; विकार नित्य एकरूप रहनेवाला भाव नहीं है, इसलिये उसे अनियत कहा है—ऐसा समझना चाहिये।**

नियतधर्म से देखने पर आत्मा सदैव एकरूप शुद्ध ही भासित होता है और अनियतधर्म से देखने पर वह विकारी भी है, अनेकरूप है। यदि आत्मा में अपने में अनियतरूप से विकार होने का धर्म न हो तो अनंत कर्म एकत्रित होकर भी उसे विकारी नहीं बना सकते। विकार अनियत होने पर

भी वह पर के कारण नहीं है परंतु आत्मा का अस्थाई अपना भाव है। शुद्धस्वभाव त्रिकाल ध्रुव है, उसमें विकार नहीं है और पर्याय में हुआ, इसलिए उसे अनियत कहा है; परंतु वह विकार होनेवाला नहीं था और हो गया—ऐसा अनियतस्वभाव नहीं है। पर्याय का जो नियतपना है, वह बात यहाँ नहीं ली है, यहाँ तो नियतरूप से त्रिकाली स्वभाव को लिया है और अनियतरूप से पर्याय की क्षणिक अशुद्धता ली है।

—यहाँ २७ वें अनियतनय से आत्मा का वर्णन पूरा हुआ।

यहाँ प्रवचनसार के परिशिष्ट में पाँच समवाय के बोल लिये हैं परंतु वे दूसरी शैली से लिये हैं; उनमें से नियत और अनियत धर्म का वर्णन किया; अब आत्मा के स्वभाव धर्म और अस्वभाव धर्म की बात करेंगे। पश्चात् काल तथा अकाल तथा पुरुषार्थ और दैव का भी वर्णन करेंगे।

[३०] कालनय से आत्मा का वर्णन

आत्मद्रव्य कालनय से, जिसकी सिद्धि समय पर आधार रखती है, ऐसा है—ग्रीष्म ऋतु के दिवस अनुसार पकनेवाले आम्रफल की भाँति। आत्मा की मुक्ति जिस समय होना है, उसी समय होती है—ऐसा कालनय से ज्ञातव्य आत्मा का एक धर्म है। जिस काल मुक्ति होती है, उस काल भी वह पुरुषार्थपूर्वक ही होती है; किंतु पुरुषार्थ से कथन न करके 'स्वकाल से मुक्ति हुई'—ऐसा कालनय से कहा जाता है। स्वकाल से मुक्ति हुई, इसलिये पुरुषार्थ उड़ जाता है—ऐसा नहीं है; स्वकाल से मुक्ति हुई, उसमें भी पुरुषार्थ तो साथ ही है।

जिस समय मुक्ति होना है, उसी समय होती है, किंतु वह मुक्ति कहाँ से होती है ?—द्रव्य में से होती है, इसलिये ऐसा निर्णय करनेवाले का लक्ष अकेली मुक्ति की पर्याय पर नहीं रहता किंतु पर्याय के आधारभूत द्रव्य पर उसकी दृष्टि जाती है; 'जिस काल मुक्ति होना हो, उस काल होती है'—ऐसा धर्म तो आत्मद्रव्य का है, इसलिये आत्मद्रव्य पर जिसकी दृष्टि है, वही इस धर्म का निर्णय कर सकता है; इसलिये इस निर्णय में मुक्ति का पुरुषार्थ आ ही जाता है। अपनी मुक्ति पर्याय के काल को देखनेवाला वास्तव में द्रव्य की ओर देखता है; क्योंकि 'जिसकी सिद्धि समय पर आधारित है'—ऐसा धर्म द्रव्य का है; द्रव्य की ओर देखा, वही अपूर्व पुरुषार्थ है। द्रव्य की ओर देखनेवाले ने निमित्त, विकार या पर्याय पर से दृष्टि उठा ली है, तथा एक-एक गुण के भेद पर भी उसकी दृष्टि नहीं है; ऐसी द्रव्यदृष्टि में ही क्रमबद्धपर्याय का निर्णय, स्वकाल का निर्णय, भेदज्ञान, मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ, केवली का निर्णय—इत्यादि सब कुछ आ जाता है। कालनय का परमार्थ

तात्पर्य भी यही है कि स्वद्रव्य की दृष्टि करना। यह धर्म कहीं काल के आधार से नहीं है किंतु आत्मा के आधार से है, इसलिये मुक्ति के काल का निर्णय करनेवाला काल की ओर नहीं किंतु आत्मा की ओर देखता है।

केवली भगवान के केवलज्ञान में जो काल देखा, उस काल ही मुक्ति होती है, मुक्ति का काल बदल नहीं सकता—ऐसा आत्मद्रव्य का एक धर्म है; आत्मा के इस धर्म का निर्णय कहीं पर सन्मुख देखने से नहीं होता किंतु आत्मद्रव्य के समक्ष देखने से ही उसके धर्म का निर्णय होता है। कालनय भी किसे देखता है ?—जिसकी सिद्धि काल पर आधार रखती है, ऐसे आत्मद्रव्य को ही देखता है; इसलिये जो जीव अंतर्मुख होकर आत्मद्रव्य को देखता है, उसी ने कालनय को सच्चा माना कहा जाता है और उसका मुक्ति का काल अल्पकाल में ही होना होता है।

देखो, यहाँ एक-एक धर्म को सिद्ध नहीं करना है किंतु पूर्ण आत्मद्रव्य को सिद्ध करना है; इसलिये धर्म देखनेवाले को स्वद्रव्याश्रित अनेक धर्म का निर्णय करने में अपना ज्ञान एक अपने आत्मोन्मुख करना है। इसप्रकार द्रव्यदृष्टि करके शुद्ध आत्मा को प्रातीति में लेना ही इस सबका तात्पर्य है। जो जीव संपूर्ण आत्मा को प्रतीति में लेता नहीं है और एक-एक धर्म को पृथक् करके देखता है, उसके सर्व नय मिथ्या हैं। प्रमाणज्ञान से अनंत धर्मात्मक अखंड आत्मा को स्वीकार किये बिना उसके एक-एक धर्म का सच्चा ज्ञान नहीं होता, अर्थात् नय नहीं होता।

कालनय कहता है कि आत्मा में जिस समय सम्यग्दर्शन होना है, उसी समय होगा, किंतु वह किसे लगा है ?—जिसने द्रव्यसन्मुख दृष्टि की उसे! इसलिये जिसे यह बात जम गई, उसे तो सम्यग्दर्शन का काल आ ही गया है। आत्मा का जो धर्म है, वह क्षणिक पर्याय के आधार से नहीं है किंतु द्रव्य के आधार से है। पर्याय तो प्रति समय चली ही जाती है; एक गुण की अनेक पर्यायें तो एक समय में होती नहीं हैं, और द्रव्य तो सदैव एकरूप है; इसलिये उस द्रव्य पर दृष्टि जाते ही पर्याय के काल का या क्रमबद्धपर्याय का निर्णय होता है।

प्रत्येक समय की पर्याय का काल व्यवस्थित है। जिस पर्याय का जो काल है, उसमें फेरफार नहीं हो सकता। यदि उसमें फेरफार हो तो वस्तुस्वभाव या केवलज्ञान ही सिद्ध नहीं होगा, केवलज्ञान को भी अव्यवस्थित मानना होगा; अतः त्रिकालवर्ती पर्यायों के पिण्ड द्रव्य पर दृष्टि रखकर प्रत्येक समय की पर्यायें व्यवस्थित हैं; प्रत्येक पर्याय का स्वकाल व्यवस्थित है—ऐसा निश्चय करने में सच्चा पुरुषार्थ भी आ जाता है, क्योंकि पर्याय का निर्णय करनेवाले का मुख

आत्मद्रव्य पर है, उसकी दृष्टि में द्रव्य की ही मुख्यता है; द्रव्यसन्मुख दृष्टि में उसे पर्याय की बुद्धि नहीं रहती, किंतु द्रव्य के आश्रय में पर्याय का निर्मलपरिणमन हो जाता है और अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। और पर्यायें अव्यवस्थित—अनिश्चित माननेवाला नि:शंक हो ही नहीं सकता और व्यवस्थित का सच्चा पुरुषार्थ भी उसे नहीं होता।

अहो! वीतरागी संत चाहे जिस पक्ष से बात समझायें, किंतु उसमें वस्तु का मूलस्वभाव ही बतलाना चाहते हैं।

❀ ❀ ❀

जो मुक्ति का काल है, उसी काल में मुक्ति होती है—ऐसा कालनय से आत्मा का स्वभाव है। अब, आत्मा की मुक्ति के समय का निर्णय करनेवाले को स्वभावसन्मुख दृष्टि से ही अल्प काल में मुक्ति हो, ऐसा काल उसको होता ही है। सर्वज्ञ भगवान ने देखा है, तभी मुक्ति होगी—ऐसा कालनय से आत्मा का धर्म है; किंतु उस धर्म का निर्णय कब होता है? वह धर्म पर के आश्रय नहीं है किंतु आत्मा के आश्रय से ही है, इसलिये जब सम्पूर्ण आत्मा को दृष्टि में ले ले, तब उसके इस धर्म का निर्णय होगा। और जिसने आत्मा को दृष्टि में लिया, उसके अल्पकाल में ही मुक्ति का स्वकाल अवश्य होता है। **यह कालनय भी कहीं पुरुषार्थ उड़ाने के लिये नहीं है, किंतु उसमें वीतरागी ज्ञातादृष्टापने का सम्यक् पुरुषार्थ आ जाता है, वह मोक्ष का कारण है। जो अभेद स्वभाव पर दृष्टि करे, उसी को यह नय यथार्थरूप से जमता है; अन्य किसी को यह नय नहीं जमता।**

शंका : कालनय से आत्मा की सिद्धि समय पर आधार रखती है, इसलिये अब हमें क्या? हमें तो काल की ओर देखकर बैठना ही रहा?

समाधान : ऐसा नहीं है; सुन भाई! कालनय से जिसकी सिद्धि समय पर आधार रखती है—ऐसा कौन है?—आत्मद्रव्य! तो यह धर्म माननेवाले को काल-सन्मुख देखना नहीं रहा, किंतु आत्मा की ओर देखना रहा। आत्मस्वभाव पर दृष्टि गई, वहाँ स्वकाल अल्प समय में पकना ही होता है। यहाँ दृष्टांत में भी ऐसा आम लिया है कि जो ग्रीष्म ऋतु आने पर पक जाता है; उसीप्रकार सिद्धांत में ऐसा आत्मा लेना चाहिये कि स्वभाव का निर्णय करके स्वभाव की ओर के सम्यक् पुरुषार्थ से जिसको मुक्ति का काल पक जाता है। सर्वज्ञदेव ने तो मुक्ति का जो समय है, वह देखा है, किंतु 'मैं मुक्त होऊँगा, मुक्त होना मेरे आत्मा का स्वभाव है'—ऐसा जिसने निर्णय किया, उसे बंधन, संसार या राग की रुचि नहीं रहती; किंतु जिसमें से मुक्तदशा आना है—ऐसे स्वद्रव्य की ओर

वह देखता है और अल्पकाल में उसकी मुक्ति का स्वकाल पक ही जाता है। जिसे राग की या निमित्त की रुचि है, उसे वास्तव में मुक्ति का निर्णय नहीं है। मुक्ति का निर्णय करनेवाला आत्मा को देखता है, क्योंकि मुक्ति किसी निमित्त के, राग के या पर्याय के आश्रित नहीं है किंतु आत्मद्रव्य के आश्रित है; इसलिये वह आत्मद्रव्य का अवलंबन करके ज्ञातादृष्टा रहता है; उसे पर्यायबुद्धि का अधैर्य या उतावली नहीं होती, ज्ञातादृष्टारूप से वर्तते हुए अल्पकाल में उसकी मुक्ति हो जाती है।

जिसने अपनी मुक्ति होने का निर्णय किया कि स्वकाल में मुक्ति-पर्याय होने का धर्म मेरे आत्मा में है, उसने राग में एकाग्र होकर वह निर्णय नहीं किया है; किंतु ज्ञाताद्रव्य में ज्ञानपर्याय को एकाग्र करके वह निर्णय किया है; इसलिये वर्तमान में वह साधक तो हुआ है; अब उसकी दृष्टि आत्मस्वभाव पर है, 'मैं शीघ्र मुक्ति करूँ और संसार को टालूँ'—ऐसी पर्यायदृष्टि उसके नहीं है, अब स्वभाव में एकाग्र होने से अल्पकाल में उसकी मुक्तदशा हो जायेगी।

मैं खूब शक्ति लगाकर झट अपनी मुक्ति कर डालूँ; दया, कठिन व्रत-तपादि करके जल्दी मोक्ष प्राप्त कर लूँ—इसप्रकार पर्याय सन्मुख देखकर आकुलता करे, उसमें तो विषमता है; ऐसी विषमता से मुक्ति नहीं होती, किंतु मैं तो ज्ञान हूँ—इसप्रकार ज्ञानस्वभाव को लक्ष में लेकर उसमें एकाग्र होने से मुक्ति हो जाती है। ज्ञातादृष्टा स्वभाव में रहने से जिस समय मुक्ति होना है, उस समय हो जाती है; उसे मुक्ति का समय आने में दीर्घकाल नहीं होता। अरे! शीघ्र मोक्ष करूँ—यह भी विषमभाव है, क्योंकि अवस्था ही वस्तु की व्यवस्था है। शीघ्र मोक्ष करूँ—ऐसा कहे, किंतु मोक्ष होने का उपाय तो स्वद्रव्य का आश्रय करना है, वह उपाय तो करता नहीं है, फिर मोक्ष कहाँ से होगा? स्वद्रव्य की दृष्टि करने से मोक्ष अल्पकाल में हो जाता है, किंतु वहाँ मोक्षपर्याय पर दृष्टि नहीं रहती। स्वभाव का अवलंबन रखकर ज्ञातादृष्टा हुआ, उसमें पर्याय की उतावली करना रहता ही कहाँ है? क्योंकि स्वभाव के अवलंबन से उसकी पर्याय का विकास होता ही जाता है, अब मुक्ति होने में उसे अधिक काल नहीं लगेगा।

देखो, यह कालनय का रहस्य! जिसने इस कालनय से भी आत्मा का निर्णय किया, उसके ज्ञान में ज्ञातादृष्टापने का धैर्य हो गया, उसके आत्मद्रव्य में अल्पकाल में मुक्ति होने का स्वकाल है ही; केवलीभगवान ने भी अल्पकाल में उसका मोक्ष देखा है। कालनय से आत्मा की मुक्ति समय पर आधार रखती है—ऐसा कहा, उसमें पुरुषार्थ की निर्बलता नहीं है किंतु स्वभावदृष्टि का बल है; इसका निर्णय करनेवाला जीव द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि रखकर बंध-मोक्ष का भी ज्ञाता रह जाता है

और अल्पकाल में उसकी मुक्ति हो जाती है। केवलीभगवान के ज्ञान में उसकी मुक्ति के प्रमाण अंकित हो गये हैं, और उस आत्मा के स्वभाव में भी वैसा धर्म है। अहो! इसमें मोक्ष का पुरुषार्थ है किंतु आकुलता नहीं है—ज्ञातादृष्टापने का धैर्य है। उतावली करे तो उसके ज्ञातादृष्टापना नहीं रहा किंतु आकुलता हुई—विषमभाव हुआ; वह तो मोक्ष को रोकनेवाला है। श्रीमद् राजचन्द्रजी भी कहते हैं कि—जितनी उतावली, उतनी कचास, और जितनी कचास उतनी खटास। स्वभावदृष्टि में धर्मी को प्रमाद भी नहीं है; उतावली भी नहीं है, और न पुरुषार्थ की कचास भी है; स्वभावदृष्टि में ज्ञातादृष्टारूप से मोक्ष का प्रयत्न उसको चालू ही है और अल्पकाल में मोक्षदशा हो जाती है।

देखो, आचार्यदेव ने कालनय को गुप्त नहीं रखा; कालनय के वर्णन में भी शुद्ध द्रव्यस्वभाव के आश्रय का ही तात्पर्य निकलता है। अज्ञानी लोग बिना समझे अपनी स्वच्छंद कल्पना से विपरीत अर्थ करते हैं।

धर्मी कहते हैं कि—'भव मोक्षेपण शुद्ध वर्ते समभाव जो'—लेकिन वह किसकी दृष्टि में? ध्रुवस्वभाव की दृष्टि में; स्वभावदृष्टि में बंध—मोक्षपर्याय पर धर्मी को समभाव है, अथवा बंध टालूँ और मोक्ष करूँ—इसप्रकार पर्याय की विषमता पर उसकी दृष्टि नहीं है किंतु एकरूप चिदानंदस्वभाव पर उसकी दृष्टि है, उस स्वभाव की दृष्टि में अल्पकाल में भवांत होकर मोक्ष हुए बिना नहीं रहेगा।

यह विकार मुझे नहीं चाहिये—इसप्रकार विकार की ओर देखता रहे तो वह विषमभाव है, उसका विकार दूर नहीं होता। मुझे विकार नहीं चाहिये—इसप्रकार जो विकार को टालना चाहता है, उसकी दृष्टि विकार-सन्मुख नहीं होती किंतु शुद्धस्वभाव पर होती है; शुद्धस्वभाव में विकार नहीं है; इसलिये उस स्वभाव की दृष्टि से विकार दूर होकर अविकारी मोक्षदशा प्रगट हो जाती है।

आत्मा में मोक्षदशा प्रगट होने का जो काल है, उसी काल वह प्रगट होती है—ऐसा आत्मद्रव्य का धर्म है;—ऐसा जिसने कालनय से जान लिया, उस जीव की दृष्टि तो शुद्धचैतन्यद्रव्य पर ही पड़ी है और उस द्रव्य के आश्रय से अल्पकाल में अवश्य ही उसकी मुक्ति हो जाती है।

—इसप्रकार ३०वें कालनय से आत्मा का वर्णन पूरा हुआ।

[३१] अकालनय से आत्मा का वर्णन

'अकालनय से आत्मद्रव्य जिसकी सिद्धि समय पर आधार नहीं रखती ऐसा है—कृत्रिम गर्मी से पकाये जानेवाले आम्रफल की तरह।'

जिसे स्वभावदृष्टि है, वह जीव अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करता है। कोई जीव उग्र प्रयत्न द्वारा स्वभाव में एकाग्र होकर अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करे, वहाँ ऐसा कहा जाता है कि यह जीव उग्र पुरुषार्थ द्वारा शीघ्र मुक्त हुआ, इस जीव ने अचिरेण अर्थात् शीघ्र मुक्ति प्राप्त की। तथा गुरु भी शिष्य को ऐसा आशीर्वाद देते हैं कि स्वभाव के अवलंबन से तू अचिरं अर्थात् शीघ्र मोक्षपद को प्राप्त करेगा। अकालनय से ऐसा कथन किया जाता है परंतु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि मोक्ष का जो समय है, वह बदल जाता है। जैसे घास में रखकर आम को पकायें, वहाँ भी वह आत्म तो उसके पकने के काल में ही पका है, लेकिन घास में रखा था, उससे ऐसा कहा जाता है कि वह आम घास में रखकर जल्दी पका दिया। वैसे अल्प समय में उग्र पुरुषार्थ करके जीव मुक्त हो, वहाँ ऐसा कहा जाता है कि वह जीव पुरुषार्थ से शीघ्र मुक्ति को प्राप्त हुआ, वह अकालनय का कथन है और वैसा एक धर्म आत्मा में है। मुक्ति तो उसका जो समय था, उस समय ही हुई, उसका समय कुछ बदला नहीं गया।

यह जीव आसन्न भव्य है, यह जीव पुरुषार्थ द्वारा शीघ्र मुक्ति प्राप्त करेगा—ऐसा कहा जाता है, उसका वाच्य भी वस्तु में है। शिष्य भी गुरु के प्रति विनय से कहे कि हे नाथ! हे स्वामी! आपने मुझे इस संसार से तार दिया... यदि आप न मिलते तो हम अनंत संसार में भटकते-भटकते मर जाते, आपके चरणकमलों के प्रसाद से शीघ्र हमारे संसार का अंत आ गया और अब शीघ्र ही हम अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करेंगे। आपके उपकार से हमारा अनंत संसार नष्ट हो गया और मोक्ष निकट आ गया—इस तरह अकालनय से कहा जाता है; मोक्ष होने का काल तो जो है, वही है; वह कहीं उलटपुलट नहीं हो गया है।

आत्मा कैसा है, ऐसा शिष्य ने पूछा था। उसे आत्मा के धर्मों द्वारा आत्मा की पहिचान कराते हैं। यहाँ आचार्यदेव ने ४७ नयों से ४७ धर्मों का कथन करके आत्मा का स्वरूप बतलाया है। उनमें कालनय से ऐसा कहा कि जिस समय जिसकी मुक्ति का स्वकाल है, तभी वह मुक्ति को प्राप्त करता है। जैसे आम उसके मौसम में पकता है, वैसे आत्मा के स्वभाव में मुक्ति का जो समय है, उस समय वह मुक्तिरूप परिणमित हो जाता है। स्वभाव की दृष्टि करके स्थिर हो, वहाँ आत्मा की मुक्ति होती है। वहाँ आत्मा की अपने काल से मुक्ति हुई—ऐसा कालनय से कहा जाता है। लेकिन वह मुक्ति बिना पुरुषार्थ के नहीं हुई है।

उग्र पुरुषार्थ द्वारा जीव ने शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर ली—ऐसा अकालनय से कहा जाता है,

उसमें भी मुक्ति का जो समय है, वह तो वही है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो गया। अनंत पुरुषार्थ करके जीव ने बहुत काल के कर्मों को अल्पकाल में नाश किया और शीघ्र मुक्ति प्राप्त की—ऐसा लक्ष में लेना, वह अकालनय है।

यह जो धर्म कहे जा रहे हैं, वे सभी धर्म शुद्ध चैतन्य वस्तु के आधार से हैं; किसी निमित्त के आधार से, राग के आधार से, अकेली पर्याय के आधार से अथवा एक-एक धर्म के आधार से यह धर्म विद्यमान नहीं हैं। अर्थात् इन धर्मों का निर्णय करते समय धर्मी ऐसा चैतन्यद्रव्य लक्ष में आ जाता है। संपूर्ण वस्तुस्वभाव को दृष्टि में लिये बिना उसके धर्म का यथार्थ निर्णय नहीं हो सकता। आत्मद्रव्य की सन्मुखता से ही उसके धर्म की यथार्थ प्रतीति होती है। चैतन्यस्वभाव-सन्मुख जिसका पुरुषार्थ पलट गया हो, उसे अचिरं (शीघ्र) मुक्ति हुए बिना नहीं रह सकती।

जैसे—अचानक सर्प वगैरह के काटने से छोटी उम्र में कोई मनुष्य मर जाये तो वहाँ ऐसा कहा जाता है कि इस मनुष्य की अकालमृत्यु हुई। यथार्थतः तो उसकी आयु जिस समय पूरी होना थी, उस समय ही हुई है, कुछ जल्दी नहीं हुई, लेकिन लोक-व्यवहार से अकाल में अवसान हुआ - ऐसा कहा जाता है। वैसे ही आत्मा में एक ऐसा धर्म है कि आत्मा पुरुषार्थ करके अकाल में मुक्त हुआ अर्थात् शीघ्र मुक्तदशा प्राप्त की—ऐसा अकालनय से कहा जाता है। जो जीव वस्तुस्वभाव से विपरीत मानता है और विपरीत प्ररूपणा करता है, वह जीव प्रतिक्षण अनंत संसार की वृद्धि करता है, वैसे ही स्वभावदृष्टि के बल से सम्यक्त्वी जीव संसार को एक क्षण में नष्ट कर देता है और शीघ्र मुक्ति को प्राप्त करता है—ऐसा अकालनय से कहा जाता है। पहले स्वभाव पर दृष्टि नहीं थी और संसार पर दृष्टि थी, तब प्रतिक्षण अनंत संसार की वृद्धि करता है, ऐसा कहा और जहाँ सत्समागम से विपरीत दृष्टि को बदलकर स्वभावदृष्टि की, वहाँ एक क्षण में अनंत संसार नष्ट कर दिया—ऐसा अकालनय से कहा जाता है। परंतु संसार होना था और दूर हो गया अथवा उस समय मोक्ष नहीं होना था और हो गया—ऐसा अकालनय का अर्थ नहीं है। अकालनय से पर्याय का क्रम बदल जाये—ऐसा नहीं है। लेकिन अनंत काल के कर्म अल्पकाल में नष्ट कर दिये—ऐसा अकालनय से कहा जाता है। छद्मस्थ के ज्ञान में यह नय होते हैं, केवली भगवान के ज्ञान में नय नहीं होते, उनको तो एक साथ संपूर्ण प्रत्यक्षज्ञान वर्त रहा है।

देखो, कालनय और अकालनय से पृथक्-पृथक् दो धर्म कहे हैं, वे दोनों धर्म अलग-अलग जीव में नहीं हैं परंतु एक ही जीव में दोनों धर्म एक साथ वर्त रहे हैं; इसी तरह नियत-

अनियत वगैरह नयों से जो धर्म कहे हैं, वे भी प्रत्येक आत्मा में एकसाथ ही वर्त रहे हैं। एक जीव स्वकालानुसार मुक्ति प्राप्त करे और दूसरा जीव पुरुषार्थ करके अकाल में मुक्ति प्राप्त करे—ऐसा नहीं। अर्थात् एक धर्म एक जीव में और दूसरा धर्म दूसरे जीव में हो, ऐसा नहीं; एक ही जीव में समस्त धर्म एक साथ रहते हैं।

कालनय से तो जीव को जिस समय मुक्ति प्राप्त करना है, उस समय ही प्राप्त करता है और अकालनय से उसमें अदल-बदल हो जाये—ऐसा परस्पर विरोध नहीं है।

इस जीव ने अपने स्वकालानुसार मुक्ति प्राप्त की—ऐसा कहना, वह कालनय का कथन है, परंतु ऐसा जब कालनय से कहा तब भी, बिना पुरुषार्थ के उसे मोक्ष हुआ—ऐसा उसका अर्थ नहीं है, स्वकाल के समय भी पुरुषार्थ तो मिला हुआ ही है।

और इस जीव ने उग्र पुरुषार्थ द्वारा शीघ्र मुक्ति प्राप्त की—ऐसा कहना, वह अकालनय का कथन है। परंतु, पुरुषार्थ से शीघ्र मुक्ति प्राप्त की—ऐसा जब अकालनय से कहा, तब भी मुक्ति का स्वकाल न था और मुक्ति हो गई—ऐसा उसका अर्थ नहीं, पुरुषार्थ के समय उसका स्वकाल वैसा ही है।

इसप्रकार कालनय और अकालनय, यह दोनों नयों के विषयरूप दोनों धर्म आत्मा में एक साथ विद्यमान ही हैं, ऐसा समझना चाहिये। यहाँ जिन धर्मों का वर्णन किया जा रहा है, उन सभी धर्मों का अधिष्ठाता तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा है। ऐसे आत्मा को दृष्टि में लेना, वही इन सब धर्मों का जानने का फल है।

—यहाँ ३१वें अकालनय से आत्मा का वर्णन पूरा हुआ।

'जिसने प्रमाद को जीता, उसने परमपद को जीत लिया है। जिससे चिंतित वस्तु की प्राप्ति हो, उस मणि को चिंतामणि कहा है। वही यह मनुष्य देह है कि जिस देह में योग में आत्यंतिक ऐसे सर्व दुःखों के क्षय की चिंतना अवश्य सफल होती है। अचिंत्य जिसका सामर्थ्य है, ऐसा सत्संगरूपी कल्पवृक्ष प्राप्त होने पर जीव दरिद्र रहे, तो इस जगत में आश्चर्य ही है।'

(श्रीमद् राजचंद्रजी)

सम्यग्दर्शन

आत्मा में 'श्रद्धा' नामक एक गुण है, उसकी अनादि से विपरीत पर्याय है, जिसे मिथ्यादर्शन कहा जाता है। चतुर्थ गुणस्थान में उस पर्याय का अभाव होकर सम्यग्दर्शनरूप पर्याय होती है। वह सम्यग्दर्शन आत्मा का स्वरूप है। उस श्रद्धागुण की तीन प्रकार की पर्यायें होती हैं:—

(१) मिथ्यादर्शन:— जो जीवों के अनादिकाल से है। (और जो जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद पुन: मिथ्यादर्शनरूप परिणमित हों, उनके होता है, वे सादि मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं) यह पर्याय उल्टी-विपरीत है।

(२) सम्यग्दर्शन:— श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय है, उसे इस गाथा में 'आत्मन:रूपं' अर्थात् आत्मा का स्वरूप कहा है। श्री पुरुषार्थसिद्धि उपाय, गाथा २२ में 'आत्मरूपं तत्' अर्थात् वह आत्मस्वरूप है—ऐसा कहा है। उसी गाथा में सदैव कर्तव्यम् अर्थात् सदाकाल करने योग्य है - ऐसा कहा है। (यह शास्त्र श्रावकाचार है।) यह पर्याय चतुर्थ गुणस्थान में प्रथम उपशम सम्यक्त्व के होते ही प्रगट होती है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय की वह गाथा निम्नानुसार है:—

जीवाजीवादीनां तत्वार्थानां सदैव कर्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेश-विविक्तात्मरूपं तत्॥

(इस गाथा का अर्थ श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ४७१ में निम्नोक्तानुसार किया है):—

'विपरीत अभिनिवेशरहित जीवाजीवादि तत्त्वार्थों का श्रद्धान सदाकाल करनेयोग्य है। यह श्रद्धान आत्मा का ही स्वरूप है, क्योंकि वह दर्शनमोहरूप उपाधि के दूर होने पर प्रगट होता है, इसलिये वह आत्मा का स्वभाव है। वह चतुर्थादि गुणस्थानों में प्रगट होता है और फिर सिद्धदशा में भी सदाकाल उसका सद्भाव रहता है।'

(३) मिश्र अवस्था:— जो कुछ सम्यक् तथा कुछ मिथ्यात्वरूप होती है। यह अवस्था सादि मिथ्यादृष्टि के होती है और वह सम्यक्त्व से पतन होने पर होती है तथा वह अत्यंत अल्पकाल रहती है। (इसलिये इस पर्याय के संबंध में विशेष कथन की आवश्यकता नहीं है, यह तीसरे गुणस्थान में ही होती है।)

२. चौथे गुणस्थान में प्रगट होनेवाला निश्चयसम्यग्दर्शन एक ही प्रकार कहा है:—सम्यग्दर्शन तो कहीं *दो नहीं हैं, किंतु सम्यग्दर्शन का निरूपण दो प्रकार से है। जहाँ यथार्थ सम्यग्दर्शन को सम्यग्दर्शन निरूपित किया है, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है तथा जो सम्यग्दर्शन तो नहीं है किंतु सम्यग्दर्शन का निमित्त है अथवा सहचारी है, उसे उपचार से सम्यग्दर्शन कहा है, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है, क्योंकि निश्चय-व्यवहार का [१]सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। अर्थात् यथार्थ निरूपण, सो निश्चय और उपचारनिरूपण, सो व्यवहार है। इसलिये निरूपण की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन दो प्रकार का जानना चाहिये। किंतु एक निश्चयसम्यग्दर्शन है और एक व्यवहार-सम्यग्दर्शन है। इसप्रकार दो सम्यग्दर्शन मानना मिथ्या है।

३. निश्चय व्यवहार सम्यग्दर्शन की व्याख्या तथा उसका एक ही काल में होना:—(१) सच्चे देव-गुरु-धर्म में दृढ़ प्रतीति, (२) जीवादि सात तत्त्वों की यथार्थ प्रतीति, (३) स्व-पर का श्रद्धान, (४) आत्मश्रद्धान अर्थात् श्रद्धागुण की निर्मल दशा प्रगट होने से अपने शुद्धात्मा की अखंड ज्ञायकस्वभाव की प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। इन लक्षणों के अविनाभावसहित जो श्रद्धा होती है, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है। यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन एक ही काल में होते हैं। विपरीताभिनिवेशरहित आत्मपरिणाम निश्चयसम्यक्त्व है। क्योंकि यह सत्यार्थ सम्यक्त्व का स्वरूप है और सत्यार्थ का नाम ही निश्चय है; और विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान का (निमित्त) कारणभूत श्रद्धान व्यवहारसम्यक्त्व है। क्योंकि यहाँ कारण में कार्य का उपचार किया है और उपचार का नाम ही व्यवहार है। वहाँ जीव को देव-गुरु धर्मादि की सच्ची श्रद्धा है, और उसी के निमित्त से उसके श्रद्धान में विपरीताभिनिवेश का अभाव होता है। इसलिये यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान तो निश्चयसम्यक्त्व है, और देव-गुरु धर्मादि का श्रद्धान व्यवहारसम्यक्त्व है। इसप्रकार एक ही काल में उसके दोनों सम्यक्त्व होते हैं।

४. उपरोक्त निश्चय सम्यग्दर्शन की व्याख्या का स्पष्टीकरण—(१) जिस जीव को सच्चे देव-गुरु-धर्म की प्रतीति होती है, उसे सात तत्त्व की, स्व-पर की तथा आत्मा की श्रद्धा अवश्य होती है, क्योंकि सच्चे देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का प्रयोजन सात तत्त्वों की श्रद्धा है, और सात तत्त्वों

*मोक्षमार्गप्रकाशक देहली से प्रकाशित पृष्ठ ३६५-३६६। 'मोक्षमार्ग' के स्थान पर सम्यग्दर्शन शब्द ऊपर लिया है।

१. चारों अनुयोगों के सभी शास्त्रों में।

की श्रद्धा का प्रयोजन ऐसी श्रद्धा करना है कि जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष तो स्व हैं तथा अजीव, आस्रव और बंध पर हैं। और स्व-पर की श्रद्धा का प्रयोजन अपनी पर्याय को अपने जीव-सामान्य के सम्मुख करना है। क्योंकि उसके आश्रय से संवर, निर्जरा और मोक्ष पर्याय प्रगट होती है।

(२) यदि इन चार में से किसी एक, दो या तीन की श्रद्धा हो, शेष की न हो तो यह समझना चाहिये कि उसे एक की भी सच्ची श्रद्धा नहीं है।

(३) देव, गुरु और धर्म अथवा आप्त, आगम और गुरु की श्रद्धा—इन दोनों कथन में कोई अंतर नहीं है, दोनों एक ही हैं।

निश्चय सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से सिद्धावस्था तक सभी सम्यग्दृष्टियों के होता ही है।

श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार के श्लोक ३०, ३३, ३५, ३५ और ३६ अति महत्त्वपूर्ण हैं। इसके श्लोकांक ३० में कहा है कि—'शुद्धदृष्टि (निश्चय सम्यग्दृष्टि) जीव भय, आशा, स्नेह अथवा लोभ से कुदेवादि को न तो प्रणाम करता है और न उनकी विनय करता है।' श्लोकांक ३३ में कहा है कि—'निर्मोही (सम्यग्दृष्टि) गृहस्थ मोक्षमार्ग में स्थित है, किंतु मोही (मिथ्यादृष्टि) मुनि मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है। इसलिये मिथ्यादृष्टि मुनि से सम्यग्दृष्टि गृहस्थ श्रेष्ठ हैं।' (मोक्षमार्ग अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता)। श्लोकांक ३५ में कहा है कि—'सम्यग्दर्शन से शुद्ध अव्रती हो तो भी वह नरक, तिर्यंच, नपुंसक, स्त्री, नीच कुल, विकलांग या निर्धनता में जन्म नहीं लेता।' यहाँ चतुर्थ-गुणस्थानवाला जीव शुद्ध (निश्चय) सम्यग्दर्शनधारी होता है। यह स्पष्ट किया है। श्लोकांक ३६ में यह बतलाया है कि—'सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव कैसे कुल में जन्म लेते हैं तथा कैसे शरीर की प्राप्ति करते हैं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि वह भी चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के पवित्र (निश्चय) सम्यग्दर्शन होता है।

इस श्लोक ३५-३६ का आधार बृहद् द्रव्यसंग्रह की गाथा ४१ टीका, पृष्ठ १६१ में लिखा है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार के श्लोकांक ३४ में कहा है—'तीन काल और तीन लोक में शरीरधारियों को सम्यक्त्व के समान कुछ भी कल्याण-श्रेय नहीं है और मिथ्यात्व के समान कुछ भी अकल्याण-अश्रेय नहीं है।

मिथ्यात्व, सम्यग्दर्शन के होने पर चौथे गुणस्थान में ही जाता है। कल्याणकारी सम्यग्दर्शन तो निश्चयसम्यग्दर्शन है, क्योंकि वह श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय है; व्यवहारसम्यक्त्व, श्रद्धागुण की पर्याय ही नहीं है, वह तो चारित्रगुण की विकारी पर्याय अर्थात् शुभोपयोग है—ऐसा श्री प्रवचनसार

की १५७ वीं गाथा में श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने स्वयं कहा है; इसलिये चतुर्थ गुणस्थान से ही निश्चयसम्यग्दर्शन होता है—ऐसा निर्णय करना चाहिये।

२. पुरुषार्थसिद्धि उपायः—(जो श्रावकाचार का शास्त्र है) गाथा २२ में कहा है कि—विपरीत अभिनिवेश से रहित जीव-अजीवादि तत्त्वार्थों का श्रद्धान सदाकाल कर्तव्य है। वह श्रद्धान आत्मा का स्वरूप है। चतुर्थ गुणस्थान से निश्चय सम्यक्त्व होता है, ऐसा उसका अर्थ है, क्योंकि यहाँ उसे आत्मा का स्वरूप कहा है और सदा कर्तव्य है, ऐसा कहा है। व्यवहार-सम्यक्त्व तो राग है; वह निचले गुणस्थान में—खेद है कि—आये बिना नहीं रहता, किंतु सम्यग्दृष्टि उस राग का मात्र ज्ञाता है, कर्ता नहीं है, अर्थात् उसे अपना कर्तव्य नहीं मानता। यह सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान में प्रारम्भ होता है और सिद्धदशा में भी सदाकाल उसका सद्भाव रहता है—ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ४७१ में कहा है। यह व्याख्या सात तत्त्वों की मुख्यता से है, वहाँ शेष तीन (-निज आत्मा का, स्व-पर का तथा सुदेवादि का श्रद्धान) अविनाभावरूप से होते हैं। सिद्ध भगवान को व्यवहारसम्यक्त्व नहीं होता।

५. शास्त्रों में सम्यग्दर्शन संबंधी कथनपद्धतिः—शास्त्रों में अनेक स्थानों पर सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् चारित्र की सविकल्पदशा अथवा निर्विकल्पदशा को मिलाकर सम्यग्दर्शन का वर्णन किया जाता है। उस प्रसंग में निम्नोक्तानुसार कथन होता हैः—

(१) दसवें गुणस्थान के अंतिम समय में सम्पूर्ण राग का अभाव होता है और उसके पूर्व भूमिकानुसार राग रहता है। इसलिये 'चौथे गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक के जीव सरागी सम्यग्दृष्टि कहलाते हैं और उसके बाद के ऊपर के वीतरागी कहलाते हैं[१]।'

(१. पंडित हीरालालजी कृत द्रव्यसंग्रह टीका, गाथा ३६, पृष्ठ १२१)

(२) सातवें गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक अबुद्धिपूर्वक राग रहता है, उसे गौण करके '××अप्रमत्तादि[२] गुणस्थानवर्ती वीतरागचारित्र अविनाभूत वीतराग सम्यक्त्व और चौथे-पाँचवें तथा छट्ठे गुणस्थान में सराग सम्यक्त्व कहा है।

(२. श्री समयसार गाथा १७७-१७८ श्री जयसेनाचार्यजी की टीका, पृष्ठ २५२-२५३ प्रथमावृत्ति। ऐसा कथन द्रव्यसंग्रह गाथा २२ तथा परमात्मप्रकाश की टीका में आया है किंतु वहाँ गुणस्थान नहीं बताये हैं।)

(३) वीतरागी भावलिंगी मुनि सातवें और छट्ठे गुणस्थान में बारम्बार आते हैं, उसकी मुख्यता को लेकर श्री जयसेनाचार्य ने श्री समयसार की टीका में कहा है कि—'पंचम गुणस्थान से ऊपर के गुणस्थानवर्ती वीतराग सम्यग्दृष्टियों का मुख्यता से और सराग सम्यग्दृष्टियों का गौणरूप

से ग्रहण इसप्रकार वर्णन 'सम्यग्दृष्टि' की व्याख्या के समय सर्वत्र तात्पर्यरूप से जानना चाहिये[१]।

(१. श्री समयसार, गाथा २०१-२०२, श्री जयसेनाचार्यजी की टीका, पृष्ठ २८७, प्रथमावृत्ति।)

[सराग सम्यग्दृष्टि को वीतराग सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से व्यवहार सम्यग्दृष्टि कहा जाता है और वीतराग सम्यग्दृष्टि को सराग सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से निश्चयसम्यग्दृष्टि भी कहा जाता है। 'जिन जीवों को व्यवहार सम्यग्दृष्टि कहा है, वे उपचार से सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिये, परंतु वे वास्तव में सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा समझना चाहिये। चारित्र की अपेक्षा से रागादि का अस्तित्व होने से सराग सम्यक्त्ववान कहकर व्यवहार सम्यग्दृष्टि कहा है। श्री जयसेनाचार्यदेव ने स्वयं ही (पंचास्तिकाय की १५०-१५१ वीं गाथा की टीका में) कहा है कि जब यह जीव आगमभाषा में कालादिलब्धिरूप और अध्यात्मभाषा में शुद्धात्माभिमुख परिणामरूप स्वसंवेदन को प्राप्त करता है, तब प्रथम तो वह मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों के उपशम और क्षयोपशम द्वारा सराग [२]सम्यग्दृष्टि होता है।' इसप्रकार सराग सम्यग्दृष्टि भी यथार्थ (सच्चे-निश्चय) सम्यग्दृष्टि हैं।]

(२. श्री पंचास्तिकाय गाथा २७२ टीका, पृष्ठ २६१ फुटनोट। तथा पंचास्तिकाय श्री जयसेनजी की टीका, पृष्ठ २१७-२१८।)

बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा ३६ की टीका पृष्ठ १३७-३८ में सम्यग्दृष्टि को 'वीतराग' ऐसा विशेषण किसलिये लगाया है ? ऐसा प्रश्न किया है। उसके समाधान में कहा है कि—भेदविज्ञान उत्पन्न होने पर भी जितने अंश में रागादि का अनुभव करता है, उतने अंश में भेदविज्ञानी पुरुष भी बँधता है। (यहाँ किसी गुणस्थान की बात नहीं कही है।)

(४) श्रद्धागुण की एक की अपेक्षा से चतुर्थ गुणस्थान में प्रगट होनेवाला सम्यग्दर्शन यथार्थ है, इसलिये वह निश्चयसम्यग्दर्शन है और सातवें गुणस्थान में प्रगट होनेवाला वीतराग अथवा निश्चयसम्यग्दर्शन श्रद्धा और चारित्र इन दो गुणों को एकत्रित करके कहा गया है। इस संबंध में श्री परमात्मप्रकाश, अध्याय-२, गाथा-१७, पृष्ठ १४६-४७ में कहा है कि—'इन महापुरुषों को शुद्धात्मा उपादेय है—ऐसी भावनारूप निश्चय सम्यक्त्व तो है, किंतु चारित्रमोह के उदय से स्थिरता नहीं है।' आगे चलकर इसी टीका में कहा है कि—'शुभराग के योग से वे सराग सम्यग्दृष्टि हैं।'

(५) श्री पंचाध्यायी (भाग-२) में कहा है कि—सम्यग्दर्शन में सविकल्प (सराग-व्यवहार) और निर्विकल्प (वीतराग-निश्चय) ऐसे भेद यथार्थतः नहीं हैं। उसकी गाथा ८२१-

२२ में कहा है कि—शास्त्र और लोक में ऐसी रूढ़ि है कि सम्यक्त्व निश्चय और व्यवहार ऐसे दो प्रकार का है। व्यवहार सम्यक्त्व सराग अर्थात् सविकल्प है और निश्चय सम्यक्त्व वीतराग अर्थात् निर्विकल्प है। इसके समाधान में प्रथम ऐसा बताया है कि—यथार्थ में ऐसा माननेवाले अपनी प्रज्ञा के अपराध से मिथ्या आशयवाले हैं। उनका जो भी श्रुत-अभ्यास है, वह मात्र कायक्लेश के लिये है। (गाथा ८२७)। शास्त्रों में यह कथन किसप्रकार आता है, इसका स्पष्टीकरण (आगे चलकर) अनेक गाथाओं में दिया है, उनमें से दो गाथायें अत्यावश्यक होने से यहाँ दी जा रही हैं। 'पंचाध्यायी' भाग-२, गाथा ९०२ निम्नानुसार है:—

यत्पुनः कैश्चिदुक्तं स्यात्स्थूल लक्ष्योन्मुखैरिह।
अत्रोपचारहेतुर्यस्तं ब्रुते किल साम्प्रतम्॥९०१॥

अर्थः—किन्हीं पुरुषों ने स्थूल उपचार दृष्टि से जो दर्शन-ज्ञान को सविकल्प कहा है, उसमें जो उपचार कारण है, उसे मैं अब स्पष्टरूप से कहता हूँ।

(६) तत्पश्चात् उपचार कारण की चर्चा करके गाथा ९०९-१० में कहा है कि:—

विमृश्यैतत्परं कैश्चिदसद्भूतोपचारतः।
रागवज्ज्ञानमत्रास्ति सम्यक्त्वं तद्वदीरितम्॥
हेतोः परं प्रसिद्धैर्यः स्थूललक्ष्यैरिति स्मृतम्।
आप्रमत्तं च सम्यक्त्वं ज्ञानं वा सविकल्पकम्॥

अर्थः—केवल इस बात का विचार करके किन्हीं पुरुषों ने उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से उन गुणस्थानों में रागों सहित ज्ञान को देखकर सम्यक्त्व को भी वैसा (सराग) कहा है॥९०९॥

केवल इस हेतु से (बुद्धिपूर्वक राग के हेतु से) प्रसिद्ध रीति से स्थूल उपचार दृष्टि से उनकी ओर से ऐसा कहा है कि प्रमत्त गुणस्थान तक (चौथे-पाँचवें-छट्ठे गुणस्थान तक) सम्यक्त्व और ज्ञान सविकल्प (सराग) हैं॥९१०॥

(७) उपरोक्त शास्त्रों में तथा अन्य शास्त्रों में जहाँ श्रद्धा और चारित्रगुण की पर्यायों का भिन्न-भिन्न वर्णन किया है, वहाँ ऐसा वर्णन है कि—चौथे गुणस्थान से ही जीव के (१) *शुद्ध जिनज्ञानदृष्टि, (२) सम्यक्त्वचरणचारित्र, (३) *जिन सम्यक्त्व गुण विशुद्ध और (४) सम्यक्त्वचरण शुद्ध होता है। (५) जो जीव विशुद्ध सम्यक्त्व (श्रद्धा) करता है, वह चारित्र के दोष का परिहार करता है। (६) सम्यक्त्व का अनुसरण करनेवाला दुःख का क्षय करता है।

*(* 'चारित्र पाहुड़' गाथा ५-८-९-१३-१४-१७-१९।)*

(८) १—श्रावकत्व तथा [१]मुनित्व के कारणभूत निश्चय-सम्यग्दर्शनादि होते हैं।

(१. 'भावपाहुड़' गाथा ६६, अर्थ तथा भावार्थ।)

२—अविरत [२]देशविरत आदि में गुण का एकदेश होता है। *(२. भावपाहुड़, गाथा १२० भावार्थ)*

३—शुद्धात्म भावना से उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख उपादेय है, ऐसी प्रतीति करना (प्रतिभाति) सो [३]भावसम्यग्दृष्टि है। यह निश्चय [४]सम्यक्त्व है।

(३. पंचास्तिकाय गाथा १६३ उत्थानिका, पृष्ठ २२३ जयसेनाचार्य।)

(४. परमात्मप्रकाश, अध्याय १, गाथा ९३, पृष्ठ ९७ सं०, गाथा ९४ पृष्ठ ९८, अ० २, गाथा १५, पृष्ठ १४३ सं० (तत्पश्चात् अध्याय २, गाथा १७, पृष्ठ १४६-१४७ दो प्रकार से व्याख्यान) दिल्ली का मोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय ९, पृष्ठ ४८९। बनारसीदास कृत समयसार नाटक गुणस्थान अधिकार। श्लोक ५१ पहला चरण, दूसरी पंक्ति, पृष्ठ ४९०।)

४—श्रद्धान सदाकाल कर्तव्य है। यह [१]आत्मा का ही स्वरूप है। वह दर्शनमोहरूप [२]उपाधि के दूर होने पर प्रगट होता है, इसलिये वह आत्मा का स्वभाव है। वह चतुर्थादि गुणस्थान में प्रगट होता है, पश्चात् सिद्धावस्था में भी उसका सदाकाल सद्भाव रहता है।

(१. पुरुषार्थसिद्धि उपाय, गाथा २२।)

(२. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ४७०-४७५-४८९, दिल्ली से प्रकाशित।)

५—तिर्यंचादि और केवली—सिद्ध भगवान के सम्यक्त्व गुण समान कहा है।

६—विपरीत अभिनिवेशरहित आत्मपरिणाम निश्चय सम्यक्त्व है, क्योंकि यह सत्यार्थ सम्यक्त्व का .... है

७—[३]सम्यग्दर्शन शुद्ध-निर्मल होता है। *(३. बृ. द्रव्यसंग्रह (रायचंद्र शास्त्रमाला) पृष्ठ १५१, १६१, १७६, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, गाथा ३५-३६)*

८—जिन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ है, जिनका चित्त [४]चंदन जैसा शीतल हुआ है, जो शिवमार्ग में केलि करते हैं, जो जिनेश्वर के लघुनंदन हैं, जिनके सत्य स्वरूप सदा प्रगट हुआ है, जिनकी शांत दशा है और जिन्हें गणधर जैसा विवेक प्रगट हुआ है, वे सम्यग्दृष्टि हैं।

(४. बनारसीदास कृत समयसार नाटक, मंगलाचरण काव्य ६-७-८)

९—सम्यक्त्व होते समय [५]निर्विकल्पदशा होती है और उसके पश्चात् भी किसी-किसी समय निर्विकल्प दशा होती है। *(५. अनुभवप्रकाश, पृष्ठ-५, प्रवचनसार गाथा ८० जयसेनाचार्य टीका, पृष्ठ १०१-१०२, पंडित टोडरमल्लजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी, मोक्षमार्गप्रकाशक गुजराती, पृष्ठ ३४९।)*

१०—जो [६]अंतरात्मपना प्रगट होता है, वह मिथ्यात्व रागादि रहित होने से शुद्ध है—उसमें

जितने अंश में शुद्धि है, उतने अंश में मोक्ष का कारण होता है।

(६. प्रवचनसार अध्याय ३, गाथा ३८, पृष्ठ ३२९ जयसेनाचार्य।)

११—श्रावक को भेदाभेदरत्नत्रय तथा शुद्धोपयोग-शुद्धात्मभावना होती है।

१२—सम्यग्दृष्टि जीव अंतर्दृष्टि द्वारा मोक्षपद्धति को साध जानता है, वह बाह्यभाव को बाह्यनिमित्तरूप मानता है। वे निमित्त नाना प्रकार के हैं—एकरूप नहीं हैं, इसलिये वह अंतर्दृष्टि के प्रमाण में मोक्षमार्ग को साधता है।

इत्यादि प्रकार से चौथे गुणस्थान से प्रगट होनेवाले सम्यग्दर्शन की अद्‌भुत महिमा है। उसके प्रगट होने पर ज्ञान में से भी विपरीतता छूट जाने पर सम्यग्ज्ञान होता है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय—श्री समयसार गाथा ११ में बतलाये गये भूतार्थनय के विषयभूत निज ज्ञायकभाव का आश्रय करना चाहिये। धर्म प्रगट करने के लिये आदि, मध्य और अंत में यह एक ही उपाय है।

★

आध्यात्मिक पद

द्रव्य बना है, भाव बना है, करना भी साथ बना है।
बन रे बनाये जड़ चेतन में, अन्य क्या करने जावेरे।
ज्ञानेश्वर द्रव्य बना है॥१॥
इच्छा माफिक विश्व करन की, बेहद हाय मचावे।
कौन सुने झूठे क्रंदन को, वृथा ही कूक मचावे॥
ज्ञानेश्वर द्रव्य बना है॥२॥
करण योग की लाय लगी है, किस विधि शांति आवे।
अन्य द्रव्य तो बाहर लौटे, अडने नहिं कोई पावे।
ज्ञानेश्वर द्रव्य बना है॥३॥
श्रद्धा, ज्ञान उपयोग पलटते, णमो अरिहंत ध्यावे।
पुद्‌गल से उपयोग हटते ही, सिद्ध प्रभू अपनावे।
ज्ञानेश्वर द्रव्य बना है॥४॥
मन से गुप्त वचन से गुप्त, काया से गुप्त ही पावे।

आध्यात्मिक सम्मेलन

मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में तारीख २५-३-६३ को आध्यात्मिक-सम्मेलन हुआ था उसका दृश्य। स्वामीजी की दायीं ओर सिरे पर सम्मेलन के अध्यक्ष और मध्यप्रदेश के वित्तमंत्री श्री मिश्रीलालजी गंगवाल बैठे हैं और बायीं ओर मध्यप्रदेश के राज्यपाल (गर्वनर) श्री एच.बी. पाटस्कर बैठे दिखाई दे रहे हैं। पृष्ठ भाग में अन्य मंत्री आदि प्रतिष्ठित नागरिक हैं। इस सम्मेलन में लगभग दस हजार नर-नारी उपस्थित थे। स्वामीजी का अध्यात्म-संदेश इसी अंक में आगे दिया जा रहा है।

आध्यात्मिक संदेश

अध्यात्म विद्या सर्वश्रेष्ठ विद्या है

मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में तारीख २३-५-६३, अध्यात्म सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर अध्यात्म विद्या का संदेश देते हुए स्वामीजी ने कहा कि—जगत की सर्व विद्या में चैतन्य की अध्यात्म विद्या सर्वश्रेष्ठ है। अध्यात्म विद्या के अतिरिक्त अन्य किसी क्रियाकाण्ड में जन्म-मरण का नाश करने की शक्ति नहीं है। 'सा विद्या या विमुक्तये'—विद्या वह है, जिससे मुक्ति हो। जिससे चौरासी के अवतारों में परिभ्रमण करना पड़े, वह कुविद्या है। स्वानुभूति द्वारा आत्मा को जानना, सो अध्यात्म विद्या है और वह विद्या मोक्ष का कारण है। इस जीव ने अनेक सांसारिक विद्याएँ अनंत बार सीखी हैं, शास्त्र पढ़े हैं, परंतु जिससे जन्म-मरण का अंत आये, ऐसी

स्वानुभूतिरूप अध्यात्म विद्या एक क्षणमात्र नहीं सीखी। अंतर्मुख होकर राग से भिन्न चैतन्यस्वानुभूति द्वारा आत्मा में अध्यात्म विद्या का उद्घाटन होता है। आत्मा में जहाँ सम्यक् मति-श्रुतज्ञान प्रगट हुए, वहाँ अपूर्व अध्यात्म विद्या विकसित हो गई। जहाँ ऐसी अध्यात्म विद्या का उद्घाटन हुआ, वहाँ अल्पकाल में पूर्णानंद की प्राप्ति अवश्य होती है। इसलिये ऐसी अध्यात्म विद्या सीखने योग्य है।

अध्यात्म विद्या तो भारत की मूल वस्तु है। अंतर में शरीर से भिन्न चैतन्यस्वरूप है; उसके ध्यान द्वारा शांति प्राप्त होती है। शांति अपने स्वरूप में है किंतु जगत उसे बाह्य साधनों में ढूँढ़ता है। जीव ने कभी निजस्वरूप की प्रतीति द्वारा आत्म-प्रसिद्धि नहीं की। पर की प्रसिद्धि, दुनिया की प्रसिद्धि अनंत बार मिली, किंतु स्वानुभव द्वारा अपने आत्मा की प्रसिद्धि किये बिना जनम-मरण के फेरे दूर नहीं होते और शांति प्राप्त नहीं होती। जीवन का शोधन तथा शांति की प्राप्ति अध्यात्म विद्या द्वारा होता है। स्वानुभव से आत्मा को पहिचाने तो ऐसी अध्यात्म विद्या प्रगट होती है और वही अध्यात्म-सम्मेलन का सच्चा उद्घाटन है। जहाँ ऐसी अध्यात्म विद्या प्रगट हुई, वहाँ आत्मा में शांति का स्रोत बहने लगता है, सुख प्रगट होता है और मुक्ति हो जाती है।

गुरुदेव की शांतरस झरती वाणी में अध्यात्म-विद्या की सर्वोत्कृष्ट महिमा सुनकर दस हजार नर-नारियों की सभा खूब हर्षित हो रही थी। सम्मेलन अध्यक्षपद से बोलते हुए मध्यप्रदेश के वित्तमंत्री श्री मिश्रीलालजी गंगवाल ने कहा था—

आज हम सबके लिये सौभाग्य का दिन है कि अपने देश के महान संत पूज्य श्री कानजी स्वामी यहाँ हमारे बीच विराजमान हैं; वे इस अध्यात्म-सम्मेलन में तथा धार्मिक महोत्सव में हमें आशीर्वाद देकर मोक्ष का परम श्रेष्ठ मार्ग बतलायेंगे। इस भौतिक साधनों के कृत्रिम जीवन में फँसे पड़े हुए जीवों को शांति का सच्चा मार्ग बतलाने के लिये संत-महात्मा धरती पर विचरते हैं; उसीप्रकार पूज्य स्वामीजी सौराष्ट्र से यहाँ पधारे हैं। वे अध्यात्म संदेश सुनाने आये हैं। मुझे विश्वास है कि यहाँ की जनता ऐसे आध्यात्मिक सम्मेलन का लाभ उठायेगी और स्वामीजी का संदेश सुनकर आध्यात्मिक शक्ति की वृद्धि करके अपने महान देश की शक्ति बढ़ायेगी।

अध्यात्म-सम्मेलन के उद्घाटन-भाषण में राज्यपाल श्री एच.वी. पाटस्कर ने कहा था कि—अध्यात्म-विद्या भारत की एक विशिष्ट परम्परा है। आत्मा क्या है, वह कहाँ से आया और कहाँ जायेगा ?—यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। रशिया और अमेरिका ने आकाश में रॉकेट छोड़े हैं,

उनमें भौतिक प्रगति भले हो, परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से कोई प्रगति नहीं है। यदि अध्यात्म विषय की ओर मनुष्य की दृष्टि न जावे तो उसे शांति प्राप्त नहीं होती और संघर्ष तथा हिंसा बढ़ती है। मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ कि आज यहाँ अध्यात्म-सम्मेलन प्रारम्भ हो रहा है और आध्यात्मिक संदेश देनेवाले एक अच्छे संत-महात्मा यहाँ पधारे हैं—यह हम सबका पुण्य है। ऐसे आध्यात्मिक सम्मेलन में सम्मिलित होना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। मुझे विश्वास है कि यहाँ जो पवित्र कार्य हो रहा है, उससे सब लोग लाभान्वित होंगे।

भगवान श्री ऋषभदेव के

सातवें भव की सम्यग्दर्शन संबंधी

एक महान प्रेरणादायक कथा

गतांक नंबर २२८ से चालू

[आर्य वज्रजंघ और श्रीमती आर्या को भोगभूमि में परमकल्याण मूर्ति सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद अपने को परम उपकार के करनेवाले निस्पृही मुनिराज श्री प्रीतिंकर गुरुदेव के प्रति-असाधारण भक्ति, उल्लास, बहुमान, विनय, प्रमोद और उपकार का जो अपने ज्ञान समुद्र में पावनकारी मंगलमय प्रवाह उछल रहा है, उन्हीं का यह भावभीगा वर्णन है, जो पढ़ते समय परमोपकारी गुरुवर्य श्री जिनसेनाचार्य के प्रति हम भक्तजन श्रद्धा से नमन करते हैं।]

श्री प्रीतिंकर मुनिराज इसप्रकार आर्य वज्रजंघ को समझाकर आर्या श्रीमती को धर्मवात्सल्यवश कहने लगे कि हे माता! तू भी अति शीघ्र ही संसाररूपी समुद्र को पार कहने के लिये नौका समान यह भूतार्थदर्शी सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर, निरर्थक ही इस स्त्री पर्याय में किसलिये खेदखिन्न हो रही है? हे माता! सम्यक्त्व की महिमा अनुपम है—सर्व प्रकार की स्त्रियों में, रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक छोड़कर नीचे के छह नरकों में, भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी

देवों में तथा दूसरी तुच्छ पर्यायों में सम्यग्दृष्टि जीवों की उत्पत्ति कभी होती नहीं। इस निंद्य स्त्री पर्याय को धिक्कार है कि जो सदाकाल निर्ग्रंथ दिगंबर मुनि धर्म पालन करने के लिये अयोग्य ही है, और जिसमें विद्वानों के कंडे की अग्निवत् कामवासना-संताप कहा है। हे माता! अब तू **नित्य निज पूर्णरूप शुद्धात्मा का ही आश्रय है, ऐसा निर्दोष सम्यग्दर्शन की आराधना कर।** और इस स्त्री पर्याय को छोड़कर क्रम से सात परमस्थानों को प्राप्त कर।

[भावार्थ-(१) सत्जाति (२) सद्गृहस्थता (३) पारिव्रज्य अर्थात् मुनियों के व्रत (४) सुरेन्द्रपद (५) राज्यपद (६) अरहंतपद (७) सिद्धपद - यह सात परम स्थान कहने में आते हैं।] सम्यग्दृष्टि जीव क्रमशः इन परमस्थानों को प्राप्त होता है। आप लोग अति अल्प ही काल में उत्तम भवों को धारण करके ध्यानरूपी अग्नि से समस्त कर्मों को भस्मकर अविनाशी परमपद को प्राप्त करेंगे।

इसप्रकार प्रीतिंकर आचार्य के वचनों को प्रमाण मानते हुए आर्य वज्रजंघ ने अपनी पत्नी के साथ-साथ प्रसन्न चित्त होकर स्वसन्मुखता के बल द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, **वह वज्रजंघ का आत्मा अपनी प्रिया के साथ-साथ अपूर्व निज निधि समान सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके अत्यंत संतुष्ट हुआ।** यह योग्य ही है, कारण कि अपूर्व वस्तु का लाभ प्राणियों को महान संतोष को प्राप्त कराता ही है। जिसप्रकार कोई राजकुमार सूत्र में (तन्तु में) पिरोई हुई मनोहार माला को प्राप्त कर अपनी राज्यलक्ष्मी के युवराज पद पर स्थित होता है; उसप्रकार वह वज्रजंघ का जीव भी सूत्र में (जैन सिद्धांत में) पिरोई हुई मनोहर सम्यग्दर्शनरूपी कंठमाला को प्राप्त करके मुक्तिरूपी अनुपम राज्य संपदा के युवराज पद पर स्थित हुआ था, विशुद्ध पुरुषार्थ पर्याय के कारण निर्वाण प्राप्त करने की इच्छुक वह सती आर्या (श्रीमती) भी सम्यक्त्व की प्राप्ति से अत्यंत संतुष्ट हुई थी। जो पूर्व कभी भी प्राप्त नहीं हुआ है, ऐसे सम्यग्दर्शनरूपी रसायन के आस्वाद द्वारा वे दोनों (दंपति) कर्म नष्ट करनेवाले ऐसे पवित्र जैन धर्म में महान दृढ़ता को प्राप्त हुए।

(पूर्व कथित) सिंह, बंदर, सूकर और नेवले के जीव भी गुरुदेव प्रीतिंकर मुनि के चरणमूल का आश्रय पाकर के आर्य वज्रजंघ और आर्या श्रीमती के साथ ही साथ सम्यग्दर्शनरूपी अमृत को प्राप्त हुए थे। जिन्होंने आनंददर्शक चिह्नों से अपने मनोरथ की सिद्धि को प्रगट किया है, ऐसे दोनों दंपतियों को धर्म प्रेम से दोनों ही मुनिराज बारंबार स्पर्श कर रहे थे।

वह वज्रजंघ का जीव जन्मांतर संबंधी उन्हीं के प्रति असाधारण प्रेमवश आँखें

फाड़फाड़कर टकटकी लगाकर देखता ही रहा अर्थात् श्री प्रीतिंकर मुनिराज के चरण कमल की ओर देख रहा था, और उन्हीं के क्षणभर के स्पर्श से वह बहुत ही संतुष्ट हो रहा था, बाद में वे दोनों चारणऋद्धिधारक मुनि अपने योग्य देश में जाने के लिये तैयार हुवे, उस समय वज्रजंघ के जीव ने मुनिवरों को प्रणाम किया, और थोड़े दूर तक विदा के लिये उन्हीं के साथ-साथ तैयार हुआ, चलते समय उन दोनों मुनियों ने उसे आशीर्वाद देकर हितोपदेश दिया, और कहा कि हे आर्य! फिर भी तेरा दर्शन हो, तुम यह सम्यग्दर्शनरूपी सम्यग्धर्म को कभी मत भूलना, इसप्रकार कहकर वे दोनों गगनगामी मुनि शीघ्र ही अदृश्य हो गये।

अनंतर जब दोनों चारण मुनिराज चले गये, तब वह वज्रजंघ का जीव क्षण एक तक बहुत ही उत्कंठित होता रहा। सो ठीक ही है, प्रिय मनुष्यों का विरह मन के संताप के लिये ही होता है। वह बार-बार मुनियों के गुणों का चिंतवन करने लगा। अहा! कैसा आश्चर्य है.... कि साधु पुरुषों का समागम हृदय से संताप को दूर करता है, परम आनंद को बढ़ाता है और मन की वृत्ति को संतुष्ट कर देता है। प्राय: साधु पुरुषों का समागम दूर से ही पाप को नष्ट कर देता है, उत्कृष्ट योग्यता को पुष्ट करता है, और अत्यधिक कल्याण को बढ़ाता है। ये साधु पुरुष मोक्षमार्ग को सिद्ध करने में सदा दत्तचित्त रहते हैं, इन्हें सांसारिक लोगों को प्रसन्न करने का कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता। ये मुनिजन केवल परोपकार करने की बुद्धि से उनके पास जा जाकर मोक्षमार्ग का उपदेश दिया करते हैं। वास्तव में यह महापुरुषों का स्वभाव ही है। मोक्ष की इच्छा करनेवाले ये साधुजन अपने दु:ख दूर करने के लिये सदा निर्दय रहते हैं, अर्थात् अपने दु:ख दूर करने के लिये किसी प्रकार का आरंभ नहीं करते, पर के दु:खों में सदा दु:खी अर्थात् उनके अज्ञानजन्य दु:ख को दूर करने के लिये सदा तत्पर रहते हैं। और दूसरों के कार्य सिद्ध करने के लिये निस्वार्थ भाव से सदा तैयार रहते हैं। कहाँ हम और कहाँ ये अत्यंत निस्पृह साधु! और कहाँ यह मात्र सुखों का स्थान भोगभूमि अर्थात् नि:स्पृह मुनियों का भोगभूमि में जाकर वहाँ के मनुष्यों को उपदेश देना सहज कार्य नहीं है, तथापि तपस्वी हम लोगों के उपकार में कैसे सावधान हैं; ये साधुजन सदा यही प्रयत्न किया करते हैं कि संसार के समस्त जीव सदा सुखी रहें और इसीलिये वे यति कहलाते हैं। जिसप्रकार इन चारण ऋद्धिधारी पुरुशों ने दूर से आकर हम लोगों का उपकार किया, उसीप्रकार महापुरुष दूसरों का उपकार करने में प्रीति रखते हैं। तपरूपी अग्नि के संताप से जिनका शरीर अत्यंत कृष हो गया है, ऐसे उन चारण मुनियों को मैं अब भी साक्षात् देख रहा है, मानों वे अब भी मेरे सामने ही खड़े हैं। मैं

उनके चरणकमलों में प्रणाम कर रहा हूँ और वे दोनों चारण मुनि कोमल हाथ से मस्तक पर स्पर्श करते हुए मुझे स्नेह के वशीभूत कर रहे हैं। मुझ, धर्म के प्यासे मानव को उन्होंने सम्यग्दर्शनरूपी अमृत पिलाया है, इसीलिये मेरा मन भोगजन्य संताप को छोड़कर अत्यंत प्रसन्न हो रहा है।

वे प्रीतिंकर नाम के ज्येष्ठ मुनि सचमुच में प्रीतिंकर हैं क्योंकि उनकी प्रीति सर्वत्र गामी है और मार्ग का उपदेश देकर उन्होंने हम लोगों पर अपार प्रेम दर्शाया है। भावार्थ—जो मनुष्य सब जगह जाने की सामर्थ्य होने पर भी किसी खास जगह किसी खास व्यक्ति के पास जाकर उसे उपदेश आदि देवे तो उससे उसकी अपार प्रीति का पता चलता है। यहाँ पर भी उन मुनियों में चारण ऋद्धि होने से सब जगह जाने की सामर्थ्य थी परंतु उस समय अन्य जगह न जाकर वे वज्रजंघ के जीव के पास पहुँचे, इससे उसके विषय में उनकी अपार प्रीति का पता चलता है।

महाबल के भव में भी वे मेरे स्वयंबुद्ध नामक गुरु हुए थे और आज इस भव में भी सम्यग्दर्शन देकर विशेष गुरु हुए हैं। यदि संसार में गुरुओं की संगति न हो तो, गुणों की प्राप्ति भी नहीं हो सकती, और गुणों की प्राप्ति के बिना जीवों के जन्म की सफलता भी नहीं हो हो सकती। जिसप्रकार सिद्ध रस के संयोग से तांबा आदि धातुएँ सुवर्णपने को प्राप्त हो जाती हैं; उसीप्रकार गुरुदेव के उपदेश से प्रगट हुए गुणों के संयोग से भव्य जीव भी शुद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। जिसप्रकार जहाज के बिना समुद्र नहीं तिरा जा सकता है; उसीप्रकार गुरु के उपदेश के बिना यह संसाररूपी समुद्र नहीं तिरा जा सकता। जिसप्रकार कोई पुरुष दीपक के बिना गाढ़ अंधकार में छिपे हुए घट-पद आदि पदार्थों को नहीं देख सकता; उसीप्रकार यह जीव भी उपदेश देनेवाले गुरु के बिना जीव-अजीव आदि पदार्थों को नहीं जान सकता। इस संसार में भाई और गुरु ये दोनों ही पदार्थ मनुष्यों की प्रीति के लिये हैं। पर भाई तो इस लोक में ही प्रीति उत्पन्न करते हैं और गुरु इस लोक तथा परलोक, दोनों ही लोकों में विशेषरूरूप से प्रीति उत्पन्न करते हैं। जबकि गुरु के उपदेश से ही हम लोगों को इस प्रकार की विशुद्धि प्राप्त हुई है, तब हम चाहते हैं कि जन्मांतर में भी मेरी भक्ति गुरुदेव के चरण कमलों में बनी रहे।

इसप्रकार चिंतवन करते हुये वज्रजंघ की सम्यक्त्व भावना अत्यंत दृढ़ हो गई। यही भावना आगे चलकर इस वज्रजंघ के लिये कल्पलता के समान समस्त इष्टफल देनेवाली होगी। श्रीमती के जीव ने भी वज्रजंघ के जीव के समान ऊपर लिखे अनुसार चिंतन किया था, इसलिये इसकी सम्यक्त्व भावना भी सुदृढ़ हो गई थी। इन दोनों पति-पत्नि का स्वभाव एक साथ था, इसलिये दोनों

में एक सी अखंड प्रीति रहती थी। इसप्रकार प्रीतिपूर्वक भोग भोगते हुए उन दोनों दंपतियों का तीन पल्य प्रमाण भारी काल व्यतीत हो गया। और दोनों जीवन के अंत में सुखपूर्वक प्राण छोड़कर बाकी बचे हुए पुण्य से एक घर से दूसरे घर के समान ऐशान स्वर्ग में जा पहुँचे। जिसप्रकार वर्षा काल में मेघ अपने आप ही उत्पन्न हो जाते हैं और समय पाकर आप ही विलीन हो जाते हैं; उसीप्रकार भोगभूमिज जीवों के शरीर अपने आप ही उत्पन्न होते हैं और जीवन के अंत में अपने आप ही विलीन हो जाते हैं। जिसप्रकार वैक्रियिकशरीर में दोष और मल नहीं होते, उसीप्रकार भोगभूमिज जीवों के शरीर में भी दोष और मल नहीं होते। उनका शरीर भी देवों के शरीर के समान ही शुद्ध रहता है। वह वज्रजंघ आर्य ऐशान स्वर्ग में हमेशा प्रकाशमान रहनेवाले श्रीप्रभ विमान में देदीप्यमान कांति का धारक श्रीधर नामका ऋद्धिधारी देव हुआ। और आर्या श्रीमती सम्यग्दर्शन के प्रभाव से स्त्रीलिंग से छुटकारा पाकर उसी ऐशान स्वर्ग के स्वयंप्रभ नामक उत्तम देव हुई। सिंह, नकुल, वानर और शूकर के जीव भी अत्यंत सुखमय इसी ऐशान स्वर्ग में बड़ी-बड़ी ऋद्धियों के धारक देव हुए। सो ठीक ही है पुण्य से क्या दुर्लभ है ? इस संसार में धर्म के बिना स्वर्ग कहाँ ? और स्वर्ग के बिना सुख कहाँ ? इसलिये सुख चाहनेवाले पुरुषों को चिरकाल तक धर्मरूपी कल्पवृक्ष की ही सेवा करनी चाहिये।

सिंह, शूकर, बांदरों और नकुल का जीव अनुक्रमों से चित्रांगद, मणि कुंडल, मनोहर और मनोरथ नाम का देव हुआ।.....इसप्रकार से आगामी काल में तीर्थंकर होनेवाला वह प्रसन्नचित्त श्रीधर देव भोगोपभोग की सामग्री से हर समय (सदा ही) संतुष्ट रहता था और भेदविज्ञान के बल से निस्पृह (जलकमलवत्) रहता था। (क्रमशः)

छठवें गुणस्थान में मुनि को

निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय दोनों

एक साथ होते हैं।

परमात्मप्रकाश अध्याय २, गाथा १३३ की टीका में छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनि का धर्म निम्नप्रकार बताया है।

'यतिना तु निश्चय रत्नत्रये स्थित्वा व्यावहारिक रत्नत्रय बलेन विशिष्ट तपश्चरणं कर्तव्यं'

अर्थ—यति को यह योग्य है कि निश्चयरत्नत्रय में ठहरकर व्यवहाररत्नत्रय के बल से महान तप करना। (पृष्ठ २७८, आवृत्ति सन् १९३७)

परमात्मप्रकाश, गाथा १३२, पृष्ठ २७६ में कहा है कि 'गृहस्थेन धने तृष्णा न कर्त्तव्या तर्हि किं कर्त्तव्यम् ? भेदाभेदरत्नत्रयाराधकानां सर्व तात्पर्येणाहारादि चतुर्विधं दानं दातव्यम्।'

अर्थ—यहाँ कोई प्रश्न करे कि गृहस्थ धन की तृष्णा न करें तो क्या करें ? उसका उत्तर : निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक जो यति, उनकी सब तरह गृहस्थों को सेवा करनी चाहिए, चार प्रकार का दान देना।

श्री समयसार, गाथा २०१, २०२ की टीका में श्री जयसेनाचार्य ने निम्नप्रकार कहा है कि:—

अत्र तु ग्रंथे पंचमगुणस्थानादुपरितन गुणस्थान वर्तिनां वीतराग सम्यग्दृष्टिनां मुख्य वृत्या ग्रहणं।

अर्थ—यहाँ इस ग्रंथ में तो पंचम गुणस्थान से उपरितन गुणस्थानवर्त्ति वीतराग सम्यग्दृष्टियों का मुख्यतया ग्रहण किया है। क्रमशः

दो राजकुमारों का वैराग्य

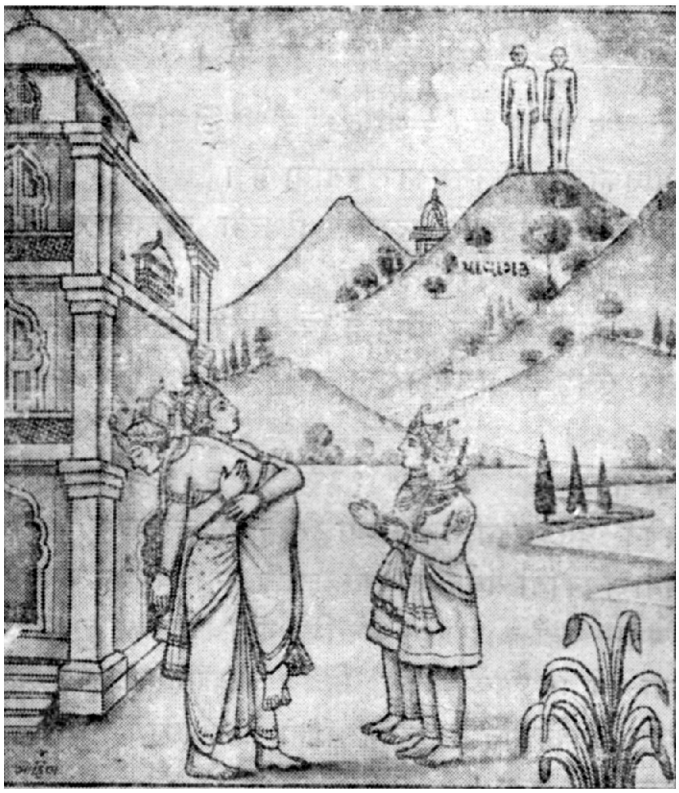

लव और कुश की निर्वाणभूमि पावागढ़ सिद्धक्षेत्र की यात्रा के समय पूज्य स्वामीजी ने कहा था कि—वाह! धन्य है उन राजकुमारों की दशा! इस पावागढ़ क्षेत्र पर दृष्टि पड़ी तब से उन्हीं का जीवन आँखों के समक्ष तैर रहा है.... धन्य है उनकी मुनिदशा! धन्य है उनका वैराग्य! और धन्य है उनका जीवन! उन्होंने जन्म लेकर अपना अवतार सफल बनाया।

रामचंद्र और लक्ष्मण दोनों भ्राताओं में परस्पर अपार स्नेह था। एक बार देव उनके स्नेह की परीक्षा लेने आया... रामचंद्रजी की मृत्यु के कृत्रिम समाचार सुनते ही लक्ष्मणजी 'हाय... राम!' कहकर सिंहासन पर ही लुढ़क गये और मृत्यु को प्राप्त हुए। उसी समय रामचन्द्रजी वहाँ पहुँचे और लक्ष्मण को जीवित मानकर उनके मृत शरीर को कंधे पर रखकर घूमने निकल पड़ते हैं.... दिन पर दिन बीत रहे हैं।

काका की मृत्यु और पिता की वह दशा देखकर रामचंद्रजी के दोनों पुत्रों को संसार से वैराग्य हो जाता है... और पिता के निकट दीक्षा की आज्ञा लेने जाते हैं। रामचंद्रजी के कंधे पर लक्ष्मणजी का मृत शरीर पड़ा है.... उसी समय दोनों कुमार अति विनयपूर्वक हाथ जोड़कर वैराग्य भरी वाणी में आज्ञा माँगते हैं कि—पिताजी! अब हम इस क्षणभंगुर असार संसार को छोड़कर दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। दीक्षा लेकर हम ध्रुव चैतन्य का ध्यान धरेंगे और आनंद में लीन होकर इसी भव में सिद्धपद प्राप्त करेंगे। हमें दीक्षा की आज्ञा दीजिये। हे तात! जिनशासन के प्रताप से सिद्धपद की साधना का जो अंतरंग मार्ग है, वह हमने देखा है; अब हम उसी मार्ग पर चलेंगे।—ऐसा कहकर जिनके रोम-रोम में, प्रदेश-प्रदेश में वैराग्य की धारा उल्लसित हो रही है, ऐसे वे दोनों राजकुमार मुनिदीक्षा लेने के लिये रामचंद्रजी को नमन करके वन में चले जाते हैं।

मुनि होकर वे दोनों मुनिवर वन-जंगल में विचरते हैं और आत्मध्यान में अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करते-करते केवलज्ञान के साथ केलि करते हैं। वे लव और कुश दोनों सती सीताजी के पुत्र थे... दोनों चरमशरीरी थे... दोनों ने एकसाथ जन्म लिया था... दोनों ने एकसाथ दीक्षा ली... और दोनों ने यहाँ पावागढ़ से मोक्ष प्राप्त किया... दोनों को चैतन्य की प्रतीति थी और चैतन्य के परम आनंद का मार्ग अंतर में देखा था। अंतर में देखे हुए मार्ग पर चलकर वे यहाँ से सिद्ध परमात्मा हुए। अंतर के चिदानंदस्वरूप में लीन होकर उन्होंने अपनी आत्मशांति की साधना की।

जिसमें आनंद कूट-कूटकर भरा है, ऐसे चिदानंदस्वभाव की प्रतीति सहित दोनों राजकुमार दीक्षा के लिये कहते हैं कि—हे पिताजी! हमें आज्ञा दो... अब हम अपने चिदानंदस्वरूप में समा जाना चाहते हैं। इस संसार में अनंतकाल तक बाह्य भाव किये, अब हमें स्वप्न में भी संसार की इच्छा नहीं है... अब तो हम मुनि होकर अपनी पूर्ण अतीन्द्रिय आनंददशा की साधना करेंगे। इस संसार भ्रमण में जीव ने चारों गतियों के अवतार अनंत बार किये हैं; एकमात्र सिद्धपद कभी प्राप्त नहीं किया... अब तो हम अपने चिदानंदस्वरूप में समा जायेंगे और अभूतपूर्व ऐसे सिद्धपद को प्राप्त करेंगे। स्वभाव का मार्ग हमने देखा है, उसी परिचित मार्ग पर चलकर मुक्ति का वरण करेंगे।—इसप्रकार वैराग्य आने से पिता की आज्ञा लेकर दोनों रजाकुमार महेन्द्र उद्यान में गये और अमृतेश्वर मुनिराज के संघ में दीक्षा धारण की... फिर आत्मध्यान सहित विचरते हुए यहाँ पावागढ़ पर्वत पर आये और ध्यान में लीन होकर केवलज्ञान प्रगट करके मोक्षपद प्राप्त किया।

धन्य हैं वे भगवंत!

[आराधना का उत्साह]

आचार्यदेव आराधना के आराधक जीवों के प्रति प्रमोद से कहते हैं कि

—अहो! रत्नत्रय के आराधक वे भगवंत धन्य हैं।—

धण्णा ते भयवंता दंसणाणग्गपवरहत्थेहिं।
विषयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं॥१५७॥

अहो, जगत में धन्य हों तो वे ऐसे धर्मात्मा हैं कि जो दर्शन-ज्ञानरूपी दो बलवान हाथों की प्रधानता द्वारा भवसमुद्र को पार कर लेते हैं और विषयरूपी मगरों से भरा हुआ जो संसार, उसमें पड़े हुए भव्य जीवों को भी पार उतारते हैं। ऐसे भगवंत जगत में धन्य हैं। आचार्यदेव प्रमोदपूर्वक कहते हैं कि—अहो! जो सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानसहित हैं; तदुपरांत चिदानंदस्वरूप में लीन हुए हैं और इसप्रकार उत्तम आराधना द्वारा संसार से पार होते हैं—उनका अवतार सफल है। अन्य जीवों को भी वे आराधना में लगाकर संसार से पार उतारते हैं—ऐसे भगवंत धन्य हैं।

हे सत्पुरुष ज्ञानी धर्मात्मा! आप तो रत्नत्रय की आराधना द्वारा संसार समुद्र से पार हो गये और ऐसी आराधना का उपदेश देकर अन्य जीवों को भी संसार समुद्र से पार उतारा। घोर संसार समुद्र में पड़े हुए जीवों को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान रूपी दो हाथों के अवलंबन द्वारा पार उतारा। हे भगवान! आप धन्य हैं... जिसे स्वयं तरना आता है, वही दूसरों को तिरने में निमित्त होता है। इस जगत के प्राणी चैतन्य से च्युत होकर विषय-कषायों से भरे हुए भवसमुद्र में डूब रहे हैं, वहाँ महा आराधक संत स्वयं तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना से पार हुए और अन्य भव्य जीवों को वह मार्ग दर्शाकर भव से पार उतारा। कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि—अहो! धन्य हैं वे भगवंत! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान तो उनके दो मुख्य हाथ हैं; उनके बल से भव्य जीवों को पार उतारते हैं। ऐसे संत-धर्मात्मा इन्द्रों द्वारा भी पूज्य हैं, जगत में वे ही वास्तव में धन्य हैं। उनके अतिरिक्त अन्य वैभववान या राजा-महाराजाओं को भी सचमुच धन्य नहीं कहते। ऐसा जानकर तू आराधक जीवों के प्रति भक्ति से आराधना का उत्साह कर—ऐसा उपदेश है।

आराधक जीवों को धन्य है!
उन्हें भक्ति सहित नमस्कार हो!

सुवर्णपुरी समाचार

परमोपकारी पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं, प्रवचन में सवेरे परमात्मप्रकाश गाथा ५५ तथा दोपहर को समयसारजी शास्त्र में से परिशिष्ट चलता है। कार्तिक मास अष्टाह्निका का हरसाल माफिक खास उत्साह, भक्ति, मण्डल विधान में जिनसहस्त्रनाम महा पूजा तथा अंत में जिनेन्द्र-कलशाभिषेक विधि सहित सानंद सम्पन्न हुआ।

नया जिनमंदिर

जसदण (सौराष्ट्र) इस शरीर में आसोज सुदी १०मी के शुभ दिन राजकोट निवासी स्व० श्री मोहनलाल कालीदास जसाणी के पुत्रों के द्वारा नये जिनमंदिर की शिलान्यास विधि सम्पन्न हुई।

नया प्रकाशन

श्री समयसार कलश टीका

(पंडित श्री राजमल्लजी कृत)

हस्तलिखित प्रतियों से बराबर मिलान करके आधुनिक राष्ट्रभाषा में, सुंदर ढंग से, बड़े टाइप में उत्तम प्रकाशन:—

आत्महित का जिसको प्रयोजन हो, उनके लिये गूढ़ तत्त्वज्ञान के मर्म को अत्यंत स्पष्टतया खोलकर स्वानुभूतिमय उपाय को बतानेवाला यह ग्रंथ अनुपम ज्ञान निधि है। पंडित श्री राजमलजी (विक्रम संवत् १६१५) पूर्वाचार्यों के कथनानुसार आध्यात्मिक पवित्र विद्या के चमत्कारमय यह टीका बनाई है। लागत मूल्य ५) होने पर घटाया हुआ मूल्य २) पोस्टेज १.३५

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

धर्मात्मा के गर्भ और जन्म कल्याणक

श्री तारणस्वामी कृत 'ममल पाहुड़' में ७४वाँ प्रकरण 'कल्यानक फूलना' अर्थात् पंच कल्याणक सम्बन्धी लोरी है; उसमें आध्यात्मिक दृष्टि से पंच कल्याणक का वर्णन किया है। उसमें कहते हैं कि—सम्यग्दृष्टि श्रद्धावान भव्य जीव के मनरूपी गर्भ में श्री जिनेन्द्र भगवान वास करते हैं। रत्नकूखधारिणी माता की भाँति वह भव्य जीव कहता है कि—हे भाई! मैंने सम्यग्दर्शनरूपी उत्तम रत्न को धारण किया है, मेरे उदर में शुद्धात्मा की प्रतीति प्रगट हुई है। उस सम्यग्दर्शन के प्रताप से आत्मा में मोक्ष का बीजारोपण हुआ है; अब मुझे आत्मिक मार्ग अथवा निश्चय मोक्षमार्ग प्राप्त हो गया है। मेरी शक्ति के गर्भ में परमात्मा विराजमान हैं। मुझे तारणस्वामी अरिहंत परमात्मा मिल गये कि जो स्वयं संसार से पार हुए हैं और तरने का मार्ग बतलाकर अन्य जीवों के भी तारणहार हैं।

जन्म कल्याणक का लक्ष करके कहते हैं कि—जिसप्रकार तीर्थंकर के जन्म से जगत में प्रकाश फैलता है, उसीप्रकार मेरे हृदय में शुद्ध परमात्मा के अवतार से सम्यग्ज्ञानरूपी प्रकाश प्रगट हुआ है... मेरे आत्मा में धर्म का अवतार हुआ, वह महान कल्याणकारी है। हे भाई! मुझे परम सहकारी जिनेनद्र भगवान सहज ही मिल गये हैं। आत्मा में शुद्धात्मपरिणति प्रगट हुई, वह निश्चय से जन्मकल्याणक हैं। वह जन्मकल्याणक होने से अंतर के स्वानुभव में आनंद जल के कलश भर-भरकर आत्मा का अभिषेक होता है।

(अष्ट प्रवचन से)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार शास्त्र	५-०	अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१-५०
प्रवचनसार	प्रेस में	जैन बाल पोथी	०-२५
नियमसार	५-५०	छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
पंचास्तिकाय	४-५०	छहढाला (नई सुबोध टी.ब.)	०-८७
आत्मप्रसिद्धि	४-०	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२-५०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०)	५-०	सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१-८५
स्वयंभू स्तोत्र	०-६०	जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१-४५
मुक्ति का मार्ग	०-६०	अपूर्व अवसर प्रवचन और	
समयसार प्रवचन भाग १	४-७५	श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	०-८५
समयसार प्रवचन भाग २	४-७५	भेदविज्ञानसार	२-०
समयसार प्रवचन भाग ३	४-२५	अध्यात्मपाठसंग्रह पक्की जिल्द	५-०
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०	'' '' कच्ची जिल्द	२-२५
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]		भक्ति पाठ संग्रह	१-०
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०	वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	०-६०	स्तोत्रत्रयी	०-५०
भाग-२ ०-६० भाग-३	०-६०	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
योगसार-निमित्त उपादान दोहा	०-१२	'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक चंदा	३-०
श्री अनुभवप्रकाश	०-३५	'' फाईलें सजिल्द	३-७५
श्री पंचमेरु आदि पूजा संग्रह	१-०	शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन बृ० पूजा	०-७५	जैनतत्त्व मीमांसा	१-०
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६-०		

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।